❁ ॐ ❁

शुभाशंसा

अबकी साल श्री गंगोत्तरी में गौरीकुण्ड गुहा में श्री स्वामी स्वानन्द जी कुछ समय तपोवृति में रहे हैं। उनकी दृढ़ अचंचल तपोनिष्ठा देखकर हम लोग सब बहुत प्रसन्न हुए। पुस्तिका रूप से प्रकाशित करने के लिये अपने विचारों का कुछ संकलन भी उन्होंने किया है।

स्वामी जी की, तथा उनके सदुद्यमों की उत्तरोत्तर जय की आशंसा करता हूँ बड़े स्नेह और सन्तोष पूर्वक।

श्री गंगोत्तरी
१६-७-५५

स्वामी तपोवनम्

जाग्रत्स्वप्न - सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते,
या ब्रह्मादि पिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।
सैवाहं न च दृश्य वस्त्विति दृढ़प्रज्ञापि यस्यास्ति चेत्,
चण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम॥

श्री भगवान् शङ्कराचार्य

❀ सूचीपत्र ❀

निवेदन

'आत्मनिष्ठा' 'आनन्दलीला' व 'मन्त्र गार्हस्थ' तथा 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशित होने के अनन्तर प्रत्यक्ष भगवती भागीरथी माता की कृपा से श्री गंगोत्री में वैठकर 'आनन्द मिलन-स्मृति' प्रकाश करने का संकल्प उठता था। स्मृति का अर्थ मोह विनिर्मुक्त अपने स्वरूप की स्मृति है। "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा तत्प्रसादात्मयाऽच्युत।" (गीता अ० १८) यह आत्मस्मृति विचार पूर्वक अविद्या दूर होने पर ही लभ्य है, अन्य कोई उपाय नहीं। 'वस्तु सिद्धिः विचारेण न किञ्चित् कर्म कोटिभिः' निद्रादोष युक्त पुरुष के स्वप्नों के सर्व प्रकार दुःख जैसे जगने पर ही समूल विनाश होते हैं, अन्य किसी प्रकार की चेष्टा से दूर नहीं होते हैं। उसी प्रकार यह जागतिक, भौतिक, दैविक, शारीरिक तथा मानसिक सब प्रकार दुःख उत्तम रूप विचार से अपने आनन्दस्वरूप में जागने पर ही सम्पूर्ण रूप से मिट जाते हैं। परन्तु मध्यम व अधम अधिकारी की बुद्धि भोग-वासना-निष्ठ मलिन होने से अपने हृदय स्थित नित्य विद्यमान भगवान को अनुभव कर नहीं सकता। उसकी बुद्धि को शुद्ध करने के लिये ध्यान, समाधि, उपासनादि कहा गया है। परिशुद्ध बुद्धि से ही आध्यात्मिक विचार, भागवत व आत्म-साक्षात्कार हो सकता है। दोनों आँखों में बहुत दिनों से मोतियाबिन्द का रोगी व्यक्ति जैसे जगत विद्यमान रहते हुए भी देख नहीं पाता, डाक्टर द्वारा आपरेशन करने पर जगत दिखाई पड़ता है। वैसे ही अविद्या दोष विशिष्ट बुद्धि से पुरुष सर्वत्र नित्य विद्यमान भगवान

को ही अनुभव नहीं कर सकता। निष्काम कर्म, उपासना, ध्यान, समाधि से चित्त निर्मल व बुद्धि एकाग्र होने से अन्दर-बाहर सर्वत्र आत्मदेव का ही दर्शन करता है। जीवन्मुक्त पुरुष को भी जिनके प्रारब्ध व व्यवहारिक दुःख निर्मुक्त होने का संकल्प उठता है, उनके लिये भी नित्य-निरन्तर निर्विकल्प समाधि सुखास्वादन पथ दिखाया गया है। गंगोत्री व उत्तर-काशी के साक्षात् शिवस्वरूप स्वामी तपोवन जी महाराज, अवधूत रामानंद (छोटा), त्यागमूर्ति विष्णुदत्त जी और मंडलेश्वर विष्णु देवानन्द जी महाराज, कैलाश, गोमुख और शिवलिंग के चित्र भी दर्शन के लिये संयोजित हैं। अन्त में सर्वव्यापी परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि पाठकगण अन्तर्मुखी वृत्ति की ज्योति से इस पुस्तिका का अध्ययन कर सकें।

आपका आत्मा ही—

ग्रन्थकार रूप में

❀ ॐ तत्सत् ब्रह्मणेनमः ❀

आनन्द मिलन-स्मृति

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतदुत्तमं सत्यं यत्र किंचिन्न जायते ।।

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यदकिंच सचराचरम् ।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवो उपलभ्यते ।।

प्रपंच यदि विद्येत् निवर्तेत न संशयः ।
मायामात्र मिदं द्वैत मद्वैतं परमार्थतः ।।

न निरोधेः नचोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थतः । (गौ० का०)

जीव कभी जन्मता नहीं, जन्मने का कभी संभव ही नहीं। जिसका कुछ कारण नहीं वह कार्य कैसे होगा ? इस जगत का कोई कारण नहीं, इसलिये इस जीव का जगत उपजता नहीं। कुछ जन्मा ही नहीं, कुछ सृष्टि हुआ ही नहीं। मध्य में व्यक्त रूप में भास रहा है। एक अद्वितीय परब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म विषय में कुछ किञ्चित् मात्र भी उपजता नहीं। समष्टि मन के स्वप्नरूप संकल्प में यह दृश्य-मान स्त्री, पुत्र, धनादि, पृथ्वी, जलादि पञ्चमहाभूत भास रहे हैं। वास्तविक अज, अव्यय आत्मतत्त्व में न कुछ जन्मता है न जन्मने की संभावना। यह एक अद्वैत तत्त्व है। इसलिये गौड़ पादाचार्य जी ने माण्डूक्य कारिका के अद्वैत प्रकरण के अन्त में अद्वैत तत्त्व के सारभूत इस श्लोक की इतनी जोर से व्याख्या किया।

अपने मन से ही जगत् - संसार कल्पना सृष्टि व बंध मुक्ति का कारण है। मन ही अपने को बंध मानता है और फिर वही अपने को मुक्त स्वरूप अनुभव करता है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयो:।" साधु समाज में एक दृष्टान्त प्रचलित है—एक धोबी १०० गधे लेकर पहाड़ी रास्ते से जा रहा था। शाम को एक पहाड़ पर जब एक एक करके सब गधाओं को बांधा तो अन्त में एक रस्सी खूंटे की कमी हुई, वह शायद कहीं गिर गया था। तब धोबी ने ९९ गधे तो बाँध दिये और १०० वें गधे के गले में रस्सी बाँधने तथा खूटा गाड़ने का अनुकरण-मात्र किया किन्तु उस गधे ने समझा कि मुझे भी बाँध दिया गया। सवेरे चलने के समय ९९ गधे तो खोलते ही चल पड़े परन्तु १०० वाँ गधा उसी जगह में ही खड़ा रहा। धोबी के पीटने पर भी गधा आगे नहीं बढ़ा। आखिरकार धोबी हैरान होकर सोचने लगा-कारण क्या है, चलता क्यों नहीं ? फिर धोबी को ख्याल आया "ओह ! कल शाम को मैंने इस गधे को बाँधने का अनुकरण किया था, इसलिये इसका ख्याल है कि मैं बँधा हूँ।" धोबी ने गधे के गले में हाथ फेर कर खोलने का अनुकरण किया। तब गधा अपने को बन्धन से मुक्त मानकर चल पड़ा। ऐसे ही जीव भोगासक्ति के संसार को सत्य मानकर 'मैं-मेरा' रूप राग-द्वेष से बद्ध हो जाता है फिर जब सत्सङ्ग, सद्ग्रन्थ, गुरुसंग आदि से राग-द्वेष शून्य हो जाता है, तब गुरु जी हँसते हुये कान में मन्त्र पढ़कर शिर में हाथ फेर देते हैं और तभी से नित्य-मुक्त शिष्य भी अपने को मुक्त मानता है।

कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान—अर्थात् मैंने ही यह कार्य किया, मैं करूँगा, मैं ही यह सब भोगने वाला हूँ इत्यादि रूप जो मिथ्या

अहंकार लोग करते हैं–यदि विचार से देखा जाय तो अनुभव होता है कि माया के द्वारा कालक्रम से धन, शक्ति. यौवन आदि आते हैं फिर स्वप्नवत् कालक्रम से मिट जाते हैं। समष्टि मन के स्वप्न में अज्ञानी जीव जाग्रत में स्त्री, पुत्र जगतादि देखता है परन्तु राग-द्वेष से मुक्त होकर अपने स्वरूप में जागने पर ध्यान दृष्टि में जगत भासता ही नहीं, सर्वव्यापी एक चैतन्य सत्ता ही अनुभव होती है–दृष्टि का भेद-मात्र है। अज्ञानी की दृष्टि में जगत ही जगत भासता है-ब्रह्म नहीं, और ज्ञानी की दृष्टि में ब्रह्म ही ब्रह्म अनुभव होता है, जगत भासता ही नहीं।

छान्दोग्य उपनिषद् कहता है कि 'वाचारम्भणं नामधेयं मृत्तिकेव सत्यं' हंडी सराव आदि जो कुछ मिट्टी के कार्य हैं उनमें एकमात्र मिट्टी ही सत्य है. नामरूप मिट्टी के विभिन्न आकार में आरोपमात्र किया जाता है। जैसे सोने का हार, चूड़ी आदि भूषण कहा जाता है। हार, चूड़ी आदि भूषण की सोना छोड़ कर और कुछ सत्ता नहीं। सोना छोड़ कर और कुछ विशेष सत्ता हो तो, हार चूड़ी से सोना पिघलकर अलग कर एक हाथ में लेओ, दूसरे हाथ में देखो हार व चूड़ी नाम-रूप कहाँ है ? सोने के विशिष्ट आकार से नाम रूप मात्र कल्पित था। वृहदारण्यक उपदिषद् के घट भाष्य में भगवान् श्री शंकराचार्य ने विस्तारित व्याख्या में दिखलाया कि मिट्टी के अन्दर ही पहले से घट, सराव आदि आकार निहित थे। कुंभकार ने घट सराव आदि के नाम रूप उन्मोचन मात्र किया। जिसके अन्दर जो वस्तु नहीं रहती उससे वह वस्तु निकलती नहीं। जैसे तिल से तेल निकलता है, रेत से कभी तेल निकलेगा नहीं। दूध से ही मक्खन निकलता है,

पानी से मक्खन निकलता कभी किसी ने देखा नहीं। अतएव जिसके अन्दर जो वस्तु पहले से ही रहती है उससे ही वह वस्तु प्रकट होती है। ऐसे ही यह जगत महाप्रलय में मूला प्रकृति में अव्यक्त रूप से पहले से ही रहता है, सृष्टिकाल में स्वप्नवत् प्रकटमात्र हो गया। जैसे एक वटबीज के अन्दर वट के शाखा, पत्र आदि अप्रकट रूप से विद्यमान है, इसलिये जब वट बीज को मिट्टी, जल आदि अनुकूल अवस्था मिल जाती है तब वट वृक्ष ही निकलता है, दूसरा पीपल व आम का वृक्ष नहीं निकलता। अतएव बीज में सूक्ष्म रूप से प्रकट अवस्था का सब कुछ रहता है। ऐसा ही इस जगत के आकाश, वायु, जल, जीव वृक्षादि महाप्रलय में अज्ञान भूमिका में बीज रूप से रहते हैं, सृष्टिकाल आने मात्र पर अव्यक्त से प्रकट हो जातें हैं। छोटे शिशु बालक बालिकाओं के अन्दर अव्यक्त रूप से पितृत्व व मातृत्व रहते हैं, पूर्ण समय आने पर पितृत्व व मातृत्व प्रकट होता है। बचपन में खिलौने से खेलने के समय भी उस अवचेतन मन के बीज-रूप संसार का प्रकाश पाते हैं। फिर समय व्यतीत होने पर अपनी अज्ञान भूमिका में बीज रूप से अप्रकट अवस्था में लय हो जाता है।

यह जो प्रकट व अप्रकट दोनों अवस्थाओं का प्रकाशक, प्रकाश-स्वरूप सत्तामात्र है, वही सब अवस्थाओं में अनुभूत एकमात्र पारमार्थिक सत्ता है और दृश्यवर्ग व्यक्ताव्यक्त रूप से प्रकाश और प्रकाश्य ही नाना रूप विचित्र संसार का खेल प्रकाशित हो रहा है। ज्ञानी की दृष्टि में ब्रह्म ही ब्रह्म है-तरंग बुद्बुद् समुद्र ही समुद्र है लेकिन अज्ञानी की दृष्टि में ब्रह्म सत्य सत्ता अनुभव होता नहीं, जगत संसार ही भासता है। इस विषय में एक सुन्दर दृष्टान्त है—एक समय एक

भक्त वैरागी महन्त ने एक आश्रम बनाया और उसमें सोने की मूर्ति श्री रामचन्द्र जी की और श्री हनुमान जी की स्थापित किया। कुछ दिन के बाद वह वृद्ध महन्त मर गया और नया चेला उसकी जगह महन्त बन गया। कुछ ही दिनों में देश में दुर्भिक्ष पड़ गया तब वह नया महन्त एक हनुमान जी तथा एक श्रीराम जी की मूर्ति लेकर सुनार की दुकान पर बेचने को गया। सुनार ने दोनों मूर्तियों को तोला तो दोनों का वजन बराबर था। हिसाब करके हनुमान जी की मूर्ति का मूल्य दिया; फिर उतना ही रुपया श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति का देने लगा, महन्त था अनपढ़-राम राम भजन करता था, उसे क्रोध आ गया। वह बोला कि तुम श्री राम जी की मूर्ति का मूल्य हनुमान जी की मूर्ति के बराबर देता है। भक्त और भगवान में कुछ अन्तर देखता नहीं! भगवान सारे विश्व के मालिक और भक्त उनका एक अंशमात्र है, दोनों का मूल्य बराबर कैसे होगा ?

कहने का अभिप्राय सुनार की दृष्टि में तो हनुमान जी व श्रीराम जी थे ही नहीं, सोना ही सोना था,परन्तु महन्त नाम रूप की दृष्टि से रामचन्द्र जी व हनुमान जी को देखता है और इसीलिये वह इतनी भिन्नता देख रहा है-इतना आश्चर्य मान रहा है। नाम रूप कल्पित मात्र हैं, सत्तामात्र ही (सोना) सत्य है; लेकिन नाम रूप के मोह में फँसकर अज्ञानी के निकट नाना रूप यह जगत भासता है और ज्ञानी की दृष्टि में यह जगत आत्मा का चिद्विलास ब्रह्मसत्ता ही है।

कार्य के अन्दर कारण का गुण ही रहता है। मूल उपादान छोड़ कर नया उपादान नहीं बनता है। जैसे स्वर्ण से कई प्रकार के भूषण (हार चूड़ी आदि) बन जायँ तो स्वर्ण ही रहता है, ताँबा या लोहा

तो बनता नहीं। स्वर्ण को भी इसी ढङ्ग से रखने पर भूषण कहा जाता है। वस्तुतः हार व चूड़ी स्वर्ण छोड़कर और कुछ नहीं। यह जगत–संसार भी शान्तस्वरूप, आनन्दमय ईश्वर से आया, ईश्वर ही इसका उपादान व निमित्त कारण है। इसलिये ईश्वर-सृष्ट इस संसार में शान्ति और आनन्द छोड़कर और कुछ विपरीत धर्म अशान्ति व दुःखादि हो नहीं सकता; लेकिन अशान्ति दुःखादि देखा जाता है क्यों? इसके कारण जीव अपनी कल्पना से आरोपित नाम रूप की मिथ्या सृष्टि कर लेता है, यह ही दुःख का एकमात्र कारण है। जैसे ईश्वर सृष्टि किया पञ्चभूत व तत्कार्य, जीव अपने अन्तःकरण की वासना के कारण 'मैं मेरे' की कल्पना करता है। यह 'मैं-मेरा' ही दुःख का कारण और निर्मम अर्थात् सब कुछ श्री भगवान का है–यह ही परम सुख है। एक मकान आज मेरा है, उसे एक लाख रुपये में बेच दिया, कल यदि उसमें आग लग जाय तो लोग बोलते हैं कि ईश्वर ने मेरे को बचा दिया, नहीं तो मेरी कितनी हानि हो जाती। क्यों भाई! दुःख क्यों नहीं हो रहा है, मकान तो वही जल रहा है—कारण उससे 'मैं मेरा' चला गया। संसार में रोज कितने हजार पुत्र, पति, स्त्री, दोस्त मर रहे हैं लेकिन तुम्हे दुःख क्यों नहीं होता है? कारण उनके साथ मैं मेरा सम्बन्ध नहीं हैं। जहाँ पर मैं मेरा सम्बन्ध नहीं है वहाँ दुःखभी नहीं है और जहाँ मैं–मेरा सम्बन्ध है वहाँ अपनी स्त्री, पुत्र, पति के जरा सा बुखार चढ़ जाने पर उसी समय अपना सिर दुखना शुरू होता है, बुद्धि भी और काम नहीं करती, सारा संसार दुःखमय मालूम होता है और इस "मैं-मेरा" की वासना के कारण जो केवल कल्पना मात्र है विचार से दिखलाता हूँ।

सब कुछ है ईश्वर का लोग कहते हैं मेरा-मेरा, भगवान विष्णु कहते हैं कि मैं ही संसार का पालनकर्ता हूँ, लोग कहते हैं संसार मेरा है, मैं ही पालने वाला हूँ; संसारी लोग ईश्वर के अधिकार छीन लेते हैं, अपने घर से और मन से ·ईश्वर को निकाल देते हैं, दूर कर देते हैं। फिर सुख और शान्ति कहाँ से मिलेगी भाई ? शान्ति स्वरूप आनन्दमय ईश्वर जहाँ नहीं है वहाँ शान्ति और आनन्द कहाँ से मिलेगा ? तुम्हारे हृदय में जो स्वाँस चल रहा है, कल सबेरे तक चलेगा या नहीं मालूम नहीं। अपने शरीर को ही कल प्रातः तक पालने वाला नहीं है और संसार को पालने वाला मानता है। जिसके हृदय में जैसा रंग चढ़ा हुआ है वह ईश्वर सृष्ट पञ्चभूतों को उसी रंग से देख रहा है। जिसकी आँख पर लाल चश्मा चढ़ा है वह सफेद को भी लाल ही देखता है। चश्मा जिस रंग का होगा, बाहर की वस्तु किसी भी वर्ण की हो, उसी चश्मे के रंग की दीखती है। आँख की गोलक तो यन्त्र मात्र है, असली देखता है मन, मन दूसरी चिन्ता में रहे तो आँखें देखती हुई भी देखती नहीं। मन में जैसी कल्पना, वासना होती है बाहर का संसार वैसा ही दिखाई पड़ता है। सब की आँख एक वस्तु देख रही है लेकिन मन का अनुभव अलग अलग होता है। दृष्टान्त स्वरूप एक युवती स्त्री खड़ी है, ईश्वर सृष्ट पञ्चभूतों वा हड्डी मांस का एक शरीर है, वासना विनिर्मुक्त योगी ईश्वर सृष्टि हड्डी मांस की पुतली ही देखता है, परन्तु उसका बच्चा उस पुतली में मां देखता है, पति उसी पुतली में भोग्य स्त्री देखता है, पिता उसे स्नेहमयी कन्या देखता है, सखी प्यारी देखती है, ईर्ष्यायुक्त सौत दुश्मनवत् देखती है और

एक शेर अपनी लोलुप दृष्टि से सामने उपस्थित अपना भोजन रूप सुखाद्य देखता है, सबकी आंखें क्या देखती हैं ? रक्त माँस का ३॥ हाथ का शरीर परन्तु सबके दिल की आंख में जैसा रंग चढ़ा हुआ है वैसा ही अलग-अलग देख रहा है। यह दिल के आंख का जब रंग मिट जाता है, जब हृदय वासना-मुक्त शुद्ध होता है, तब इस जगत का असली रूप दिखाई पड़ता है। मिथ्या कल्पना का 'मैं मेरा' परिच्छिन्न बोध दूर हो जाता है, सारे विश्व के साथ एकात्मबोध अनुभव होता है, क्षुद्रता, अल्पज्ञता, अज्ञता भाग जाती है वह स्वयं शान्त स्वरूप आनन्दमय अनुभव करता है।

पञ्चभौतिक स्थूल आँख से दीखता है । इसलिये पञ्चभौतिक स्थूल जगत अनुभव हो रहा है। वास्तव में आनन्दमय चेतन सत्ता से ही अन्तर बाहर परिपूर्ण है। जगत की किसी भी वस्तु पर विश्लेषण करके देखिये—आप उस वस्तु के रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श आदि बाहर के गुण ही देख रहे हैं। वास्तव में जिसका शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध भास रहा है वह आश्रयभूत वस्तु को आप नहीं देख पाता। दृष्टान्त स्वरूप एक फूल लीजिए—फूल के रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श ही आप ग्रहण कर सकते हैं (फूल को हिलाने या गिराने पर थोड़ा सा शब्द होता है) लेकिन असली फूल क्या वस्तु है देख नहीं पाते। रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श तो परिवर्त्तनशील हैं। अभी फूल में आग लग जाय तो उसके रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श दूसरे रूप में रूप, रस, गंध, शब्द स्पर्श में परिणत हो जाते हैं; लेकिन वह वस्तु वही है।

रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श के अनुभव करने के लिये आँख, जिह्वा, नाक, कान और त्वच् इन्द्रियाँ बनी हैं और इनसे इन्द्रिय-ग्राह्य

वस्तु ही देख पड़ती है। (इन्द्रियग्राह्य आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक, समस्त वस्तु) व्यावहारिक दृष्टि में सब वस्तु अलग-अलग मालूम होती है, लेकिन जिसका रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श जिसके आँख, जिह्वा, नाक, कान और त्वचा जिसका सूर्य, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु; जिसने सृष्टि किया—इन्द्र, उपेन्द्र, वरुण, अश्विनी-कुमार, यम, प्रजापति उस अतीन्द्रिय वस्तु को अनुभव करना हो तो अतीन्द्रिय रूप से ही साधन करना पड़ता है। उस परमेश्वर के ही निःश्वासवत् प्रकटित श्रुति भगवती का ही आश्रय लेना पड़ता है। धारणा, ध्यान, समाधि व श्रवण, मनन, निदिध्यासन से ही अभ्यास करना पड़ता है।

अविद्या के कारण जब जीव अपने आपको भूल गया तब अपने को मनुष्य, पशु, चिड़िया आदि रूप में मान लिया। समष्टि मन के सत्वगुण से उत्पन्न हुआ व्यष्टि मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और समष्टि मन के ही तमो अंश से भोग्य पदार्थ कल्पना किया गया। जैसे जाग्रत के एक व्यक्ति का मन ही स्वप्नावस्था में कर्त्ता, भोक्तायुक्त अपने को एक जीव मानता है और स्त्री, अन्न, पानादि विचित्र भोग्य पदार्थ भी बनाता है, वह मन ही पुनः भोक्ता, भोग, भोग्य रूप त्रिपुटी सृष्टि करके अपने को अलग - अलग मान रहा है। ऐसा ही ईश्वर ईश्वर व समष्टि मन जाग्रत में भोक्ता, भोग्य, भोगरूप विचित्र संसार की मायिक सृष्टि करके अपने को व्यष्टि जीव मानकर भोग चञ्चल हो रहा है। चक्षु, कर्ण, हाथ, पाँव सब इन्द्रियाँ भी महा प्रकृति के रूप, शब्दादि को ग्रहण करने के लिये भोग्यकरण (Instrument) रूप में प्राप्त हुआ। पूर्ण होते हुए भी जब अपने को माया के कारण

अपूर्ण, अलग, अल्पज्ञ, भोक्ता समझा और अपनी प्रकृति को ही भिन्न रूप में भोग करने के लिये भोग-लिप्सु बन गया। जैसे रूप देखना चाहा तो चक्षु इन्द्रिय की सृष्टि हो गई, शब्द सुनना चाहा तो कर्ण निकल पड़ा, इस पञ्चतत्व के रसास्वादन के लिये जिह्वा बन गई, गन्ध के लिये नाक निकल पड़ी, इस जड़ प्रकृति को पकड़ कर देखना चाहा तो हाथ निकल पड़े, दूर जाकर जड़ प्रकृति देखने के लिये पाँव की रचना हो गई, ऐसी ही पञ्चतत्व को मल-मूत्रादि रूप में विसर्जन व त्याग करने के लिये उपस्थ व गुदा बन गया। चिड़िया ने उड़ना चाहा तो पंख निकल पड़े, मनुष्य ने हवाई जहाज बना लिया। मछली के जाल के भीतर वास करने के लायक अङ्ग-प्रत्यङ्ग बन गया; वृक्ष अपनी रक्षा के लिये काँटा, दुर्गन्ध रस बना लिया। कीड़ों ने अपने को छिपाने के लिये रङ्ग - विरङ्ग आकार बना लिया। इस विचित्र संसार में विचित्र आकार-प्रकार, चाल-चलन, विचित्र-विचित्र वासना के कारण ही हैं।

प्रकृति, पुरुष के परस्पर संबंध से वातावरण के अनुसार विचित्र संसार बन जाता है। कहीं भोक्ता प्रधान, कहीं भोग प्रधान। जहाँ भोक्ता प्रधान वहाँ भोग को खींच लेता है, जहाँ भोग प्रधान वहाँ भोक्ता को खींच लेता है। ठण्ढे देश में चमड़ा गोरा हो जाता है, गर्म देश में (विषुवत रेखा के निकट) चमड़ा काला पड़ जाता है। विभिन्न देशों के अनुसार कहीं लम्बा कहीं ठिगना विचित्र शरीर बन जाता है।

मन की पांच अवस्था—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। पत्थर, वृक्ष, कीड़ा, पशु में मूढ़ मन के परिचय विशेष रूप

से देखे जाते हैं। अत्यन्त तमोगुण विशिष्ट दो हांथ दो टाँग वाले मनुष्य शरीर में भी (गाँव में) मूढ़ मन का अभाव नहीं; सदा आलस्य, निद्रा प्रमाद, स्मृतिशक्ति हीनता, वासी–भोजन करने की प्रवृत्ति ये सब मढ़ मन के परिचय हैं। इसके बाद मन की क्षिप्त अवस्था आती है। रजोगुण से सदा चञ्चल, क्षण-क्षण में हजार हजार विभिन्न चिन्ताधारा, सदा कर्म व्यस्त देखा जाता है, अथच मन सब समय अस्थिर, अन्तर-वाहर में सदा लड़ाई - झगड़ा, दम्भ-अहङ्कार, अभिमान लगा हुआ ही रहता है। अधिक लवण, उग्र मिरच इत्यादि रजोगुणी आहार प्रिय लगते हैं। इस अवस्था में भी जप, ध्यान, साधना हो नहीं सकती, क्योंकि अपने पर ही अपना संयम नहीं, साधन करेगा कौन ? इसके बाद रज-सत्वगुण के मिश्रण से विक्षिप्त अवस्था आती है; कभी मन अन्तर्मुखी, कभी वहिर्मुखी, कभी इष्ट वस्तु श्री भगवान में मन लगता है, कभी मन भोग-वासना उन्मुखी होता है। साधारण मनुष्य में अधिकांश ऐसी अवस्था देखी जाती है। धीरे धीरे मनमें विचार अवश्य होता है, भोग्यपदार्थ अस्थायी हैं, नाशवान् परिणाम क्लिष्ट और अन्तर्मुखी वृत्ति में स्थायी आनन्द, शाश्वत और परिणाम मधुर है। अतः इष्ट विषय में एक रस आनन्द-मयी अन्तर्मुखी वृत्ति अभ्यस्त होती है, जितना इष्टदेव वा योगाभ्यास अभिमुखी होता है उतना ही मन निर्वात, निष्कम्प दीपशिखा की भाँति एक रस एक धारा अविछिन्न प्रवाह तुल्य एकाग्र वृत्ति हो जाती है। यही एकाग्र वृत्ति ही समस्त साधना का फल है। इसी एकाग्र वृत्ति से ही इष्ट प्राप्ति, साँसारिक समस्त विषय के अभ्युदय व उन्नति, स्मृति शक्ति वृद्धि, जाति स्मरत्व सब प्रकार सिद्धि का प्रकाश पाते हैं।

इसी एकाग्र अवस्था के अभ्यस्त होते-होते चित्त वृत्ति क्रमशः निरोध हो जाती है। सर्व प्रकार स्थूल, सूक्ष्म आदि वासना क्षय होकर साधक की दृष्टि व स्वरूप स्थित हो जाता है। मन का स्वरूप व सूक्ष्मरूप नहीं रहता है, मनोनाश होने से निर्वाण मुक्ति वा कैवल्यास्थिति होती है देह का भान तक भी नहीं रहता, सर्वव्यापी चेतन सत्ता ही अपना स्वरूप देखता है। व्यष्टि अभिमान नहीं, जहाँ जो कुछ देखे सब कुछ, सब मूर्तियाँ आकाश, वायु, जल, पृथ्वी सब एकाकार अपना रूप, व्याष्ट देहात्म बोध लुप्त अवस्था, विदेह मुक्ति होती है। कोई-कोई तो उस ज्ञानी के देह पात को ही विदेह मुक्ति कहता है परन्तु दोनों अवस्था में ही व्यष्टि देह बोध की अत्यन्त अप्रतीति सर्वतोभाव से स्वीकार्य है।

(psychologist) व मनोतत्त्व विज्ञान मन को तीन स्तर में विभाजित किया है।

(१) जाग्रत वा स्थूल सम्मुख चेतन, (focal conciousness)

(२) स्वाप्निक वा सूक्ष्म अवचेतन (subconciousness)

(३) सौषुप्तिक वा चिन्ताहीन कारण चेतन(unconciousness)

यह तीनों दृश्यों को प्रकाश्यकोटि लेकिन जो इन तीनों अवस्थाओं को प्रकाश रहा है वह प्रकाशस्वरूप वा द्रष्टा स्वरूप का अनुभव नहीं कर पाते। चक्षु अपने आप को देख नहीं सकता, अपने को अनुभव करने के लिए शुद्ध अचंचल शीशा व मित्र का आश्रय लेना पड़ता है। ऐसे ही अपने प्रकाश स्वरूप को अनुभव करने के लिये शुद्ध व एकाग्र हृदय से श्रुति भगवती व श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरू का आश्रय लेना पड़ता है।

कोई-कोई मनको समुद्र और भासमान वर्फ के साथ तुलना करते हैं। मन अपने शुद्धस्वरूप में प्रशान्त, तरंगविहीन, सीमाहीन, गम्भीर, अनन्तरूप में विराजमान है। कभी परिछिन्नता उपाधि के (शीत) कारण उस अपरिछिन्न समुद्र का जल जमकर वर्फ बन जाता है। उस वर्फ का वृहत् अंश जल के अन्दर अपरिछिन्न जलराशि के साथ एकीभाव से रहता है और ऊपर का छोटा अंश देखा जाता है। पुनः जब सूर्य किरण लगती है तब ऊपर का वर्फ धीरे-धीरे पिघल जाता है, अन्त में सब एकाकार अनन्त जल ही जल देखा जाता है। ऐसा रागद्वेष युक्त व्यष्टि मन जब गुरु व श्रुति की किरण से पिघल जाता है तब रागद्वेष दूर हो जाता है मन का मैल सब प्रकार निवृत्त हो जाता है, मनका लय विघ्न (निद्रादोष), कषायविघ्न (अनेक जन्मों के स्तब्ध संस्कार दोष), रसास्वाद विघ्न (बुद्धि में आरूढ़ एकात्मभूति की भोगेच्छा), समस्तदोष नष्ट होकर जीव अपने परमामृत स्वरूप में स्थिति होता है।

व्यष्टिमन (Individual mind) ही समिष्टमन (Collective mind) है। जीव और ईश्वर का कुछ भेद नहीं। जिस समय व्यष्टि में अभिमान है उस समय उसकी जीव संज्ञा है और जब समष्टि में अभिमान करता है तब वही ईश्वर है। जिस समय सङ्कीर्ण कलुषित मन अपने देह भोग में ही पशु समान आसक्त रहता है उस सीमा वद्ध छोटे मन को ही व्यष्टि मन कहा जाता है। और वह मन ही जब धीरे-धीरे सारे ब्रह्माण्ड के साथ समस्त प्राणी, सूर्य, चन्द्र, आकाश-वायु के साथ एकात्मबोध अनुभव करता है तब उसे

समष्टि मन व भगवान् कहते हैं। तैजस ही हिरण्यगर्भ सरूप में परिणत देखा जाता है।

इसलिये अध्यात्मवादी भारत ने व्यष्टि उन्नति के लिये पुरुषार्थ बतलाया, लेकिन पाश्चात्य भूतवादी व्यष्टि छोड़कर समाज के (Majority) बहुमत पर उन्नति का प्रयत्न करता है। भारत की भावधारा व्यष्टि की उन्नति से ही समाज की उन्नति होगी। एक एम० के० गाँधी जब महात्मा गाँधी बन जाता है तब सारा भारतवर्ष उस आदर्श का अनुसरण करता है और उससे ही समष्टि समाज का यथार्थ कल्याण हो सकता है।

व्यष्टि मन ही समष्टि बन जाता है। एक घोर देह भोग लिप्सु जब किसी आदर्श शिक्षा से आदर्श गृह स्वामी बन जाता है, तब उसका मन घर के सब सदस्यों में फैल जाता है, सब के दुःख सुख अपने हृदय में अनुभव करता है, देखा जाता है कुछ सीमा तक मन विस्तृत हो गया, फिर जब वह निःकपट समाजपति Social Leader बन जाता है, तब समाज के प्रति प्राणी का सुख दुःख वह अपने हृदय में अनुभव करता है। जब आदर्श जातीय नेता बन जाता है तब देश के दूर कोने-कोने से एक प्राणी का दुःख भी उसका हृदय बींध देता है। जब विश्व का नेता बन जाता है तब उसका मन विश्व के समस्त प्राणियों में विस्तृत हो जाता है, सब के सुख दुःख में हँसता है, रोता है, अपने लिये हँसना रोना मिट जाता है। ऐसे ही जब सूर्य, चन्द्र, आकाश, वायु, महा प्रकृति के साथ एकात्म बोध होता है तब समष्टि मन बन जाता है। वह परम पावन पुरुष मनुष्य रूप में देवता जगत का पूजनीय, धरणी उसको प्राप्त करके धन्या हो

जाती है। भगवान् मनुष्य रूप में कहो और मनुष्य भगवान् बन गया कहो एक ही बात है।

व्यष्टि बुद्धि जिसके चमत्कारित्व में सारी दुनिया मुग्ध है, दुनिया-गुणी, सिद्ध, पण्डित आदि उसकी प्रशंसा करते हैं। दर्शन-शास्त्र उस बुद्धि को भी एक जड़, अन्तःकरण की वृत्तिमात्र कहता है। चैतन्य सत्ता के प्रकाश से जड़ बुद्धि का चेतनवत् नाना प्रकार चमत्कारित्व मालूम होता है। लाल, नीले शीशे लगे हुए झरोखे से किंचित् सूर्यराशि आकर कितने लाल, नील रँग-विरँग से घर को सुसज्जित कर देती है। आपेक्षिक क्षुद्र बुद्धि से मालूम होता है कि बाहर की विश्वव्यापी प्रकाशमान सूर्य-रश्मियों से भी झरोखा की रँग-विरँग विचित्र रश्मि बड़ी प्रकाशमान तथा सुसज्जित है। लेकिन शुद्ध विचार दृष्टि से देखा जाय तो सूर्यरश्मि छोड़कर झरोखे की रश्मि की कोई सत्ता नहीं, सत्ता होती तो सूर्यास्त होने पर भी झरोखा-रश्मि घर को प्रकाशित करती होती। ऐसे ही जीव के जबतक इस जन्म या पूर्व जन्म के शुभ कर्म या सुकृत फल देते हैं तबतक बुद्धि सत्वगुण विशिष्ट होकर साक्षी के प्रकाश से ही सुन्दर, तीव्र, तीक्ष्ण बुद्धि का प्रकाश होता है, और जब पाप या अशुभ कर्म के फल उस बुद्धि को आवरण कर देते हैं, तब वह शुद्ध सत्व चैतन्य का प्रकाश यथा रीति से बुद्धि में प्रतिफलित होता नहीं; एक ही मनुष्य की बुद्धि किसी काल में मूर्खवत् अप्रकाश, जड़, किसी काल में पण्डित या प्रकाशमान होती है, परन्तु साक्षी नित्य प्रकाशमान; बुद्धि - अन्तकरण अर्थात् अन्दर की Instrument, जड़, अपने कर्मानुसार बुद्धि में सत्व, रज, तमादि जैसा-जैसा गुण आरूढ़ हो जाता है, वैसा ही प्रकाश या अप्रकाश होता है।

सृष्टि के विषय में श्रुति व्याख्या के अन्दर सृष्टि–दृष्टिवाद, दृष्टि–सृष्टिवाद और अज्ञातवाद यह तीनों मतवाद देखे जाते हैं। पाश्चात्य देश में Hegal आदि इस मतवाद को Objective Idealism के नाम से प्रचार करते रहें। लेकिन बाहर की वस्तु की वास्तविक सत्ता हो तो सबको एक ही रूप प्रतीत होना चाहिये, परन्तु जिसके मन में जैसा रंग चढ़ा हुआ है, जैसा दृष्टिकोण है वैसी ही प्रतीत होती है। जैसे एक रज्जू को ही अल्प अंधकार में सर्प, पुष्पमाला, भूछिन्न, जलधारा, लाठी आदि भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न प्रतीत होता है अथवा कई अन्धों को हस्ति के विषय में अनुभव जैसा खम्भा, दीवार, सूप, केले का वृक्ष, रस्सी आदि के सदृश विभिन्न अंगों के कारण विभिन्न मालूम होता है, ऐसा ही सम्यग्दर्शन जब तक नहीं होता है तब तक यह विचित्र संसार को असली सत्ता मानते हैं और जन्म-मरण आदि दुःख चक्र में पड़ा हुआ रहता है।

दृष्टि–सृष्टिवाद अर्थात् जैसी जैसी दृष्टि है वैसी ही सृष्टि होती जा रही है। स्वप्न में मन जैसी वासना के अनुसार दृष्टि करता है वास्तव न होते हुए भी वैसा ही दिखाई पड़ता है। पाश्चात्य देश में (Barkley) आदि ने इस मतवाद को (Subjective Idealism) नाम से प्रचार किया परन्तु पृथक-पृथक दृष्टि है, ईश्वर सृष्टि पञ्चभौतिक जगत एक रूप होते हुए भी जीव द्वैत व जीव की विभिन्न वासना के कारण विचित्र जगत अनुभूत होता है। मनुष्य जिस वस्तु को टट्टी समझ कर घृणा करता है, एक सुअर उसको प्रिय खाद्य समझ कर सुख से खाता है। एक एम० ए० क्लास की उत्तम पुस्तक को छोटा शिशु खाने की वस्तु समझ कर मुँह में डालता है। एक

अनपढ़ गँवार रद्दी कागज समझ कर जला डालता है, एक दुकानदार उस पुस्तक को फाड़कर पुड़िया बनाने के काम में लाता है, और उसी पुस्तक को एम-ए-क्लास का छात्र अपना इष्ट समझते हुए परम प्रेम से पढ़ता है। ईश्वर सृष्ट एक हड्डी-मांस-रक्त के स्त्री शरीर को आँख से सब देखते हैं लेकिन अपने दिल के रंग से एक को ही विभिन्न रूप में देखते हैं। कोई मातृ रूप, कोई स्त्री रूप तथा कोई कन्या, बहिन, सखी, दुश्मन, खाद्य आदि नाना रूप में ही आरोपित भासते हैं। और भी मरु भूमि में तृष्णार्त पथिक व मृग सूर्यकिरण-प्रतिफलित रेती में पानी, नदी, दरिया देखते हैं। चक्षुरोग-ग्रस्त दो चन्द्रमा देखते हैं। एक को दूसरा रंग भी दिखाई पड़ता है और जहाँ कुछ भी रंग ऐसे आकाश या समुद्र में अपनी आँख की नीलिमा प्रतिफलित करके नील रूप देखते हैं। अतएव अपनी विचित्र भिन्न-भिन्न मन जगत की दृष्टि से ही दृश्य जगत लम्बा स्वप्नवत् दिखलाई पड़ता है।

अज्ञातवाद अर्थात् तीनों काल में न सृष्टि न प्रतीति, दृष्टि-सृष्टिवाद में दृश्यवर्ग के पृथक् सत्ताहीन होने पर भी प्रतीति रहती है, लेकिन अज्ञातवाद में दृश्य पदार्थ का भान भी नहीं। नेति-नेति करके सारे दृश्य वर्ग का निषेध है। शशश्रृङ्ग व वन्ध्यापुत्र के विवाहवत् सृष्टि को बात सम्पूर्ण कपोल कल्पित व अलीकमात्र है।

"स एव नेति-नेति आत्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽशीर्यो नहिं शीर्यतेऽसंगो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति।"

श्रुति माता का समस्त तात्पर्य इस अजातवाद व सिद्धान्त में ही समावेश है। सृष्टि-दृष्टिवाद व दृष्टि-सृष्टिवाद अज्ञानी जीव को धीरे-धीरे अजात सिद्धान्त समझाने व चढ़ाने के लिये ही श्रुति भग-

वती ने कृपा करके सोपान सदृश उल्लेख किया। सृष्टि के सम्बन्ध में जितनी बात कही गई वह सब धात्री की कपोल कल्पित बात अलीक है। जैसे एक दरिद्र ब्राह्मण कुली का काम करने लगा, घी का मटका लेकर मुसाफिर प्रभु के पीछे-पीछे चल रहा था और सोचता था कि यह चार आना मजदूरी प्राप्त होने पर पहले मुर्गी का व्यापार करूँगा, उससे बहुत रुपया हो जायगा, तब गऊ का और फिर हाथी का व्यवसाय करूँगा, फिर बिल्डिङ्ग, क्रमशः शादी, पुत्र सब हो जायगा। जब पुत्र आकर बुलायेगा कि पिता जी चलिये भोजन करिये, मैं क्रोध से बोलूँगा—नहीं खाऊँगा। इतना चिन्तन करने व सिर हिलने से घी का मटका गिर गया, प्रभु ने क्रोध से कहा—तूने मेरे घी का नाश कर दिया; दरिद्री ब्राह्मण रोते हुए बोला—'तुम्हारा तो घी ही नाश हुआ है और मेरा तो स्त्री-पुत्र बिल्डिङ्ग आदि सब का ही घी के साथ नाश हो चुका। कहने का मतलब दरिद्र ब्राह्मण के स्त्री-पुत्र, बिल्डिङ्ग तो थे ही नहीं, अपनी चार आना मजदूरी से उसने स्त्री-पुत्र, बिल्डिङ्ग की कल्पनामात्र की थी और सारा व्यवहार उस कल्पना के अनुसार करता था, ऐसे ही सारी सृष्टि लम्बी कल्पनामें ही है, वस्तु तो एकमात्र चैतन्य स्वरूप सत्ता को छोड़कर और कुछ है ही नहीं।

वर्तमान भौतिक विज्ञान ने बहुत कुछ आविष्कार किया। जल, थल आकाश के ऊपर भी आधिपत्य किया, कुछ ही मिनटों के अन्दर अपने आविष्कर्ताओं के साथ सारे विश्व को जलाने वाले बम का आविष्कार किया मानते हैं। लेकिन अपने मन के ऊपर आधिपत्य करना जानते है ? जिससे सुख, सम्पति भोग, जिससे ही आविष्कृत पदार्थों का अनुभव कर रहे हैं। भास्कोडिगामा भारतवर्ष सृष्टि

किया, बोलना जैसा हास्यास्पद है ऐसा ही भयङ्कर अणुविक बम सृष्टि या वैज्ञानिक आविष्कार सुन कर जीवनमुक्त पुरुष हँसते हैं। जगत के सब से बड़े डाक्टर से पूछो कि भाई, तुमको एक मनुष्य को जीवन दान देना नहीं पड़ेगा, एक शरीर के अन्दर जो करोड़ों जीवाणु हैं, उन में से एक जीव को भो तुम जीवन दान दे सकते हो ? अकपट डाक्टर हाथ जोड़ कर स्वीकार करेगा, कि हम किसी को जीवन (आयु) दे नहीं सकते, हम तो पथ्य के अनुकूल दवाई देकर (नर्स) सुश्रूषा करते हैं। जीवन व आयु दान तो महा प्रकृति के अन्दर परमेश्वरी रूपिणी और शक्ति के हाथ में है। अथच भारतीय योगी ईश्वर इच्छा से सृष्टि के आदिकाल से मृत शरीर में प्राण सञ्चार कर रहा है, भारत की यह नई वस्तु नहीं है, उस रोज भी तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्राण सञ्चारिणी विद्या नाम से अलग एक विभाग रहा। ज्ञानेश्वर शंकराचार्य जगद्गुरु, भक्त तुलसीदास योगीश्वर तैलङ्गस्वामी और कितने ही महात्माओं ने मृतशरीर में प्राण सञ्चार कर भारतीय विद्या प्रत्यक्ष कराया।

सबसे बड़ा अणुविक वैज्ञानिक से पूछो भाई, एक आइटम की आप सृष्टि कर सकते हैं ? अकपट हृदय से वह कह उठेगा कि महा प्रकृति के अन्दर जो भयंकर शक्ति गुप्त रूप से है उसे मैं प्रकाश कर सकता हूँ। सृष्टि करने की शक्ति मेरे में नहीं है, अथच भारतीय यौगिक विद्या के अन्दर सब कुछ सृष्टि करने की शक्ति, महाभीषण अस्त्र-शस्त्र रहा और अभी तक गुप्त रूप से रक्खा है, परन्तु भारतीय योग आदिकाल से भौतिक वैज्ञानिक शक्ति प्रयोग करके देखा कि वह असली शान्ति और आनन्द का कारण नहीं, उस शक्ति से विश्व में

हिंसा, ध्वंस, महाप्रलय आदि दानवीय वीभत्स पैशाचिक नृत्य हो सकता है, परन्तु शान्ति और आनन्द जो कि अन्तर्विज्ञान की वस्तु है वह तो अन्तर्जगत के आविष्कार से ही मिलेगी। अन्तर्विज्ञानी विश्व में शाश्वत शांति और आनन्द प्रतिष्ठा कर सकता है। अधिकन्तु जो चित्शक्ति से इस भौतिक विज्ञान का फिल्म चल रहा है जिस के आधार पर यह जड़ शक्ति प्रतिभासित हो रही है, जो ब्रह्मविद्या अपने हृदय में शान्ति और आनन्द की प्रतिष्ठा करके दुनिया को सर्व प्रकार आसुरी भाव से मुक्त करके शान्ति और आनन्द की ओर ले जाती है, उसी ब्रह्मविद्या के ऊपर शान्ति और आनन्द के अभिमुख में, भारतीय योगियों की दृष्टि है।

ब्रह्मविद्या गुरु-शिष्य परम्परा प्राचीन काल से एकान्त हिमालय के अन्दर वा अरण्य में उपदेश दिया जाता है। पर्वतराज देवभूमि हिमालय के गाम्भीर्य, शान्त वातावरण, सरल जीवन यापन, मन को ब्रह्मविद्या ग्रहणोपयोगी शम, दम, उपरति तितिक्षा आदि सम्पन्न कर देता है। यह आरण्यक विद्या व श्रुति, गुरुपदेश गुरु मुख से शिष्य सुन कर हृदयस्थ करते थे, उस समय ग्रन्थ मुद्रणालय का इतना सुभीता नहीं था। शिष्य गुरुमुख से यह उपनिषद् व गुरुमुखी विद्या सुनते थे। इसलिये उपनिषद् का एक नाम श्रुति भी कहते हैं। उद्दालक, उपमन्यु, आरुणि, उतंक, नचिकेता, श्वेतकेतु आदि विद्यार्थी भारतीय संस्कृति के आदर्श छात्र, धमराज युधिष्ठर, पूर्ण लक्ष्य अर्जुन गुरुप्राण एकलव्य यह सब आचार्य द्रोण के प्रिय ओर भारत के आदर्श शिष्य हैं। स्मृति, मेधा, मानसिक वल, समस्त दैवी सम्पत्ति मनुष्य के अन्दर आ जाती है, जव मनुष्य ब्रह्मलक्ष्य को पकड़कर मातृवान, पितृवान और आचार्यवान वन जाता है।

आज भारतीय विश्व विद्यालय, स्कूल, कालेज, पाठशालों में यह गुरु शिष्य का आदर्श, यह गुरु शिष्य के अन्दर एक आन्तरिक आकर्षण, यह श्रद्धा या सेवा भाव नहीं है। इसके कारण ही वर्तमान विश्वविद्यालय के संचालक तथा शिक्षा पद्धति में असफलता, लक्ष्य-हीनता, पशु-प्रकृति सम्पन्न एक अजब जीव बना रहा है। जब देखता हूँ विश्वविद्यालय उत्तीर्ण एक छात्र के अन्दर नैतिक चरित्र नहीं, मानुषिक शक्ति नहीं, हृदय में आसुरी वृत्तियों का ताण्डव; वहाँ दैवीसम्पत् कहाँ से आयेगी ? चरित्र शक्ति, जिसके बल से सारे विश्व को जीता जा सकता है, वह महाशक्ति परम सम्पदा कैसे प्राप्त होगी ? और वह कैसे अपना जीवन सफल करेगा ? जिसका मूल अन्दर में नहीं वह बाहर में कैसे आयेगा ? भारतीय विश्वविद्यालय छात्रों के अन्दर प्राण सञ्चार करना चाहे तो प्राचीन काल के अनुसार गुरु-शिष्य परंपरा सम्बन्ध, नैतिक चरित्र की शक्ति की प्रतिष्ठा करना चाहिये। 'छात्रानां अध्ययनं तपः' इस बात को छात्र के अन्दर दृढ़ रूप में स्थित कर देना पड़ेगा, उसके हृदय को दैवी-सम्पद्, शान्ति और आनन्द का क्षेत्र बनाकर परम लक्ष्य की ओर ले जाते हुए आदर्श स्थापन करना पड़ेगा।

जबतक अनुभव नहीं होता है व जबतक देहाध्यास रहता है, तबतक गुरु, वेदान्त व ईश्वर को मानना उचित है, परन्तु जब आत्म-स्वरूप में निश्चित रूप से दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाता है तब असली गुरु, गुरु देहाधिष्ठित सच्चिदानन्द स्वरूप व्यापक चेतन सत्ता को ही देखता है, जो कि त्रिगुणमयी वेदों का निस्त्रैगुण्य लक्षित् पद है, जो ईश्वर वा अपना स्वरूप है। गुरु शिष्य उपदेश भी स्वप्नवत् मालूम होता है। जैसे एक मन अधिष्ठान में ही स्वप्न में गुरु, शिष्य, उपनिषद्, स्थान,

काल सब कुछ दिखाई देता है। मन छोड़कर स्वप्न दृश्य कोई भी पदार्थ सत्य नहीं, ऐसे ही जागृत में गुरु, शिष्य, उपनिषद्, स्थान, कालादि जो कुछ दिखलाई दे रहा है, इसका अधिष्ठान एकमात्र ब्रह्म-सत्ता ही सत्य अनुभव होता है। भगवान श्री शंकराचार्य ने लिखा है– "गुरु नैव शिष्य श्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।" इस विषय में महात्मा समाज में एक हँसी की गप्प है—एक सेठ जी वृद्ध हो गये, बाल बच्चे काम के लायक हो गए, रुपये पैसे की भी कमी नहीं, तब भी उसको संसार के झंझटों से छुटकारा नहीं मिलता था, सत्संग करने की फुरसत न थी। एक रोज वह अपने गुरू महात्मा जी के पास चले गए, पूछने लगे—गुरू जी, कुछ उपाय बताओ कि जिससे मैं सांसारिक कामों के झंझट से बच जाऊँ। गुरू जी बोले कि तू आज घर जाकर किसी से कुछ मत बोलना, जब कोई कुछ पूछे तब इतना ही बोलना 'उरुर'। वृद्धसेठ जी पहले से ही कुछ शास्त्रालो-चनादि गुरू जी के पास जाकर सुना ही करते थे। उन्हें गुरू जी के प्रति श्रद्धा और बिश्वास तो था ही 'उरुर' बात मान लिया, घर गए और चुपचाप बैठ गए, बड़े लड़के ने आकर अरजी की, पिता जी आप आजकल व्यवसाय नहीं देखते, दुकान तक जाते नहीं सलाह परामर्श नहीं देते, व्यवसाय कैसे चलेगा ? सेठ जी अंगूठे के साथ जवाब दिया, "उरुर"। इतने में स्त्री ने आकर के पूछा कि तुम्हारे आजकल क्या होगया ? संसार की ओर देखते ही नहीं कुछ पूछ–ताछ भी करते ही नहीं। बड़ी मुश्किल से लड़की आई बोली पिता जी हमको सुसराल भेज दो कितने रोज से आई हूँ; सेठ जी बोले 'उरुर' आखिर स्त्री, पुत्र, लड़की परामर्श कर स्थिर किया कि, गुरु जी के

पास सेठ जी कल गए थे शायद गुरु जी ने कुछ खिला पिला दिया है जिससे सेठ जी पागल हो गए हैं; कल गुरु जी को पकड़ कर ले आना चाहिए। सेठ जी का लड़का और रिश्तेदार मिलकर गुरु जी को पकड़ कर ले आये, गुरु जी ने मुश्किल से पूछा कि ऐ सेठ! तू बोलता क्यों नहीं? सेठ जी ने अंगूठा दिखाकर जवाब दिया 'उरुर' गुरु जी हैरान हो गये, बोले तेरे को हमने सिखला दिया और हमको भी 'उरुर'। तब वृद्ध सेठ जी बोले हाँ गुरु जी काम बन जाने के बाद गुरु जी को भी 'उरुर' अर्थात ज्ञान प्राप्ति के बाद गुरु जी की भी जरूरत नहीं। असली मतलब देहवान गुरु जी को अश्रद्धा करने के लिए नहीं, परन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वाधिष्ठान जो कि यथार्थ गुरु, अपना स्वरूप अनुभव करने के लिए ही है। अन्तर्यामी देव को हृदय में अनुभव करके बाहर की पूजा समाप्त हो जाती है, बाहर की पुष्प चन्दन धूप बाती बाहर में ही रह जाती है। वह आत्माराम अन्तरात्मा में ही तृप्त हो जाती है बाहर के गुरु–शिष्य सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं।

जो जहां से आया उस की तरफ ही दौड़ता है उसके साथ ही मिलना चाहता है। मनुष्य विषय नहीं चाहता है, चाहता है शान्ति और आनन्द, जो विषय में शान्ति और आनन्द मिलता नहीं उसको लात मार कर निकाल देता है, जिसमें जब तक शान्ति और आनन्द मिलता है तब तक अपनी छाती लगाकर पकड़ना चाहता है। क्योंकि मनुष्य के स्वरूप, शान्ति और आनन्द, वह आया शान्तिमय आनन्द रूप से, इसलिये शान्ति और आनन्द की ओर दौड़ रहा है। एक टुकड़ा मिट्टी का ऊपर की ओर छोड़ दो लेकिन वह नीचे आ जाता

है, क्योंकि उसका असली जन्म स्थान नीचे मिट्टी के साथ ही है, इसलिए वह मिट्टी का टुकड़ा अपने स्वरूप पृथ्वी के साथ ही मिलना चाहता है। नदी अपने वक्ष में पत्थर, जल लेकर इतने वेग से ढकेलते ढकेलते, कितना रोते रोते समुद्र में मिलना चाहती है, क्योंकि समुद्र उसका स्वरूप है। समुद्र से ही वाष्प वनकर हिमालय में आया परन्तु समुद्र की प्रसारता, गंभीरता, आनन्द हिल्लोल-तरंग एक बूँद को भी याद है परन्तु हिमालयमें वाष्परूप में आनन्द-हिल्लोल खिलने का परिवेश नहीं। वह प्रशान्त गम्भीरता यहां हो नहीं सकती। इसलिये सहस्र बूँद मिलकर नदी बनकर ढकेलते ढकेलते रोते रोते दिन रात समुद्र की ओर दौड़ रही हैं क्योंकि समुद्र के साथ मिलकर अपने स्वरूप का आनन्द उपभोग करेगी, जो जहां से आया उससे ही मिलना चाहता है।

अग्निशिखा ऊपर की ओर ही देखती है क्योंकि उसका असली स्वरूप सूर्य है, सूर्य से ही वह आया, इसलिए सूर्य के साथ ही मिलना चाहता है।

मनुष्य (जीव) का स्वरूप ही सत्‌चित् आनन्द है। इसलिये वह सत्ता को कायम रखने का प्रयत्न करता है; सब कुछ जानना चाहता है। सदा आनन्द एवं शान्ति ढूँढ़ता है, वह है अपना सच्चिदानन्द स्वरूप लेकिन अविद्या के कारण पाँचभौतिक शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर पाँचभौतिक संसार में ही अपनी सत्ता कायम रखना चाहता है, सब कुछ भौतिक जगत को ही जानना चाहता है और उससे ही आनन्द प्राप्त करना चाहता है। पुत्र, धन, सम्पत्ति नाश होने पर भी, शरीर गलित कुष्ठ होने पर भी, एवं मृत्यु समय

आने पर भी वह अपनी सत्ता कायम रखने की इच्छा रखता है। क्योंकि सत्ता उसका स्वरूप है। एक बच्चा पूछता है पिता जी यह क्या है ? वह क्या है ? माता जी यह ऐसा क्यों है, वह ऐसा क्यों है ? उस ३-४ वर्ष के बच्चे के अन्दर क्यों इतनी जिज्ञासा भरी हुई है, कारण वह आप ही ज्ञान स्वरूप है। मनुष्य आप ही ज्ञान स्वरूप वा चित् स्वरूप है इस लिये वह सब कुछ आविष्कार (नई खोज) करना चाहता है, ज्ञान में इसकी इतनी पिपास है। वह आप ही आनन्द स्वरूप है इस लिये आनन्द ही ढूँढ़ता है जिस वस्तु में उसको आनन्द नहीं मिलता है चाहे करोड़ रुपया मूल्य की हो वह त्याग देता है और जिस में आनन्द शांन्ति मिले ऐसी गुफा में नंगे पाँव नंगे शरीर से ही रहता है। क्योंकि असली मनुष्य सच्चिदानन्द से ही आया सत् चित् आनन्द का ही पुजारी है मध्य में अज्ञान अहंकार से वह ठीक से विवेक विचार कर नहीं पाता इस लिये वह विषय को पकड़ता है। यथार्थ में मनुष्य अपना स्वरूप सच्चिदानन्द के संधान में ही है। यह सच्चिदानन्द का ज्ञान अपने स्वरूप का ज्ञान व्यक्ति समाज और राष्ट्र सब के लिये कल्याणकारी है। यह ज्ञान के अभाव से ही मनुष्य अहंकार विमुग्ध हो कर अधर्म में प्रवृत्त होता है, हीरा देकर कांच खरीदता है, मानसिक सम्पद् खोकर रुपया, घर, मकान आदि सम्पद् इकट्ठी करता है जबतक धर्मबुद्धि रहती है जब तक अधर्म वा पाप प्रवृत्ति नहीं होती। जब आदमी को सदा ख्याल रहता है कि साक्षी सब कुछ देखरहा है, कर्मों के अनुसार पाप पुण्य भोगना पड़ेगा तब मनुष्य को विवेक विचार रहता है। पाप से विरक्त होता है पुण्य में सदा चित्त लगाता रहता है। जब मनुष्य इस पाँचभौतिक शरीर को

ही नित्य सत्य जानता है तब शरीर के लिये वा शरीर संबंधी स्त्री पुत्र आदि के लिये धन उपार्जन में पापाचरण करता है, जब उसको होश आता है कि यह शरीर अनित्य स्वप्नवत् है, ७०–८० साल का खेल मात्र है तब वह पाप कर्मों से अलग हो जाता है और निवृत्त हो जाता है। एक पापाचरणकारी (ब्लैक मार्केट घूस आदि में) सदा के लिये पुलिस, समाज आदि के डर से सदा एक मानसिक द्वन्द बना रहता है और उससे ही रक्त चाप (Blood presser) हृदय दौर्वल्य (Heart trouble) आदि रोग होते हैं पुलिस के द्वारा पकड़ जाने पर सजा होती है अपना मान इज्जत नष्ट हो जाता है पापाचरण आदि पहले प्रिय लगते हैं, परिणाम दुःखमय होता है जबतक विचार बुद्धि उदय नहीं होता तबतक ही पाप में लिप्त रहता है।

ब्रह्मचर्य के ऊपर दृष्टि न रखने पर कोई भी समाज या जाति दरिद्रता (दासपन) मूर्खता से बच नहीं सकती। स्थूल पुत्र आदि सृष्टि के प्रयोजन नहीं, यह बात स्मृति-शास्त्र ने नहीं कही, परन्तु ब्रह्मचर्य के पालन के बाद ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना उचित है, वह गृहस्था–श्रम में (स्त्री-पुरुष) ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ही चरित्रवान, मेधावी बनकर सुपुत्र उत्पादन कर सकता है, यह बात मनु जी ने सुनिपुण युक्ति से दिखलाई। 'ब्रह्मचर्येण जीवितम्-अ० ५७' ब्रह्मचर्यके पालन से ही तेजस्वी जीवन व मेधा उत्पन्न होती है, वह ही ब्रह्मविद्या को ग्रहण कर सकती है। कामुक, इन्द्रिय-लिप्सु स्त्री-पुरुष, जबतक उनका मन चंचल रहता है, शांत एकाग्र चित्त से कोई विचार नहीं कर सकते और शांत एकाग्र चित्त के विचार बिना कोई भी मनुष्य कर्म जीवन में भी उन्नति नहीं कर पाता। इसीलिये भारतीय ऋषियों ने ब्रह्मचर्य

के बिना मनुष्य समाज पशु सरीखे जनसंख्या (Population) वृद्धि कर सकता है, लेकिन उस समाज में जितनी मनुष्य-पशु वृद्धि होगी उतनी ही दरिद्रता, अशान्ति, मिथ्याचार, चोरी, बदमाशी, गुंडागर्दी, मूर्खता, दासपन मनोवृत्ति, अकाल मृत्यु और संक्रामक रोगों की वृद्धि होगी। ऊँची तरफ प्रतिभायुक्त देव-मनुष्य के साथ रहते हुए वह पशु-मनुष्य धीरे-धीरे मनुष्यत्व लाभ करेगा अथवा दैविक शक्ति के अभाव से वह जाति पृथ्वी से लुप्त हो जाती है, यह स्वाभाविक नीति है।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि किसी विशेष समाज के लिये यह नियम नहीं; बल्कि मनुष्यमात्र के लिये यह नियम प्रयोज्य हैं। मुसलमान समाज में एक समय सिर्फ जनसंख्या (Population) वृद्धि के स्थूल सृष्टि वृद्धि पर ही नजर रखकर योनि-भोगलिप्सा क्रमशः बढ़ गई और परिणाम में आज भी उस समाज को अधिकांश स्थलों में दुःख-दरिद्रता, दासपन और मूर्खता भोगनी पड़ रही है। एक व्यक्ति पुत्र-स्त्री के भविष्य एवं भरण-पोषण के चिन्तन बिना ही चार शादी कर सकता है। संस्कार भी (योनि चिह्न का) ऊपर है, इसलिये मन भी अधिकांश समय निम्नचक्रों (योग शास्त्र के अनुसार मूलाधार उपस्थ) में ही रहता है। अमेरिका या पाश्चात्य क्रिश्चियन समाज में अधिकांश अबाध योनि मिलन रहने पर भी, वहां प्रतिभाशाली व्यक्ति की चिन्ताधारा व राष्ट्रीय नियम कुछ अंशों में नियन्त्रण कर रहे हैं इसलिये मूढ़ता और दुःख कुछ अंशों में कम हैं। इङ्गलैंड आदि देशों में राज परिवार राष्ट्रीय नियमों से नियन्त्रित हैं। हिन्दू समाज में जिस जाति या गोष्ठी ने गुप्त रूप से ब्रह्मचर्य का अवहेलन किया वह जाति धीरे-धीरे ध्वंश की ओर अग्रसर हो गयी और जो जाति या

गोष्ठी नैतिक चरित्र के अनुसार ब्रह्मचर्य पालन करते हुए संसार धर्म का पालन करती है उसके वंशधर समाज व जाति के उच्च स्थान पर अधिकार पाते हैं, यह ही प्राकृतिक नियम हैं। ब्रह्मचर्य पालन न करने पर कोई भी शारीरिक पशु-शक्ति के खेल कुछ देर तक दिखला सकता है परन्तु उसकी दशा निर्वाणोन्मुख दीप की भाँति क्षर भर की रोशनी अथवा कटे हुए पशु की भाँति कुछ देर तक जोर से तड़प कर निश्चल हो जाने के समान है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति, समाज व देश की चंचलता जीवन के लक्षण नहीं, परन्तु ध्वन्सोन्मुख के ही लक्षण हैं। स्थूल सृष्टि पुत्रादि पैदा, पशु कीटादि भी मनुष्य से भी अनेक गुणा अधिक कर रहे हैं, परन्तु सूक्ष्म मानसिक सृष्टि जिसमें आनन्द व शाँति है, यहाँ के ब्रह्मचारी, प्रतिभाशाली, सूक्ष्मदर्शी मनुष्य ही कर सकते हैं। सूक्ष्म की ओर तथा भविष्य की ओर दृष्टि रखकर विचार पूर्वक स्थूल सृष्टि जिसमें होती है, उसमें ही यथार्थ सत्य, कल्याण तथा सौन्दर्य देखा जाता है।

वर्तमान सभ्य मनुष्य जाति के मन Objective Science पर ही निर्भर कर अपना सुख शांति व आनन्द चाहता है, और माया-मरीचिका को देखकर दौड़ रहा है। वह जानता नहीं सुख शांति व आनन्द अपना अन्तर्विज्ञान (Subjective Science) की वस्तु है। भोग चंचल मन को जब Objective Science से प्राप्त भोग वस्तु मिल जाती है, तब क्षण भर के लिये सम्मुख चेतन मन (Awoken conciousness) में वासनाहीन अन्तर्मुखी वृत्ति होने से अपना आत्मानंद ही प्रकाश पाता है। लोग भ्रम से ही ऐसा समझते हैं कि भोग्य वस्तु ने ही आनन्द दिया। अकपट (Sincere) वैज्ञानिक से

पूछ लो तुम्हारे साइन्सखाने (Labortry) में एक ऐटम की भी सृष्टि करने की शक्ति है ? वह वैज्ञानिक अकपट हृदय से स्वीकार करेगा—'यह सारी शक्तियाँ महाप्रकृति (Potential) की शक्ति से ही प्रकाशित हैं, मेरी कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं।' पिता जैसे पुत्र को पहले अर्थ सम्पत्ति देकर परीक्षा लेता है, कि वह उसका व्यवहार, उपयोग किस प्रकार से करे। उसी प्रकार से सर्वशक्तिमान, सर्व-नियन्ता श्री भगवान, वैज्ञानिक (Scientist) को बुद्धि-शक्ति देकर यह देख रहे हैं कि वह किस रूप से इसका सदुपयोग करता है। प्रथम से ही तो एटोमिक वैज्ञानिकगण अपने आविष्कृत दैत्य से ही सशंकित हो रहे हैं। जरा सा कोई भी देश या जाति इस शक्ति का दुरुपयोग करेगी तो उस सर्वनियन्ता की इच्छा से ही वह नाश हो जायगी।

आत्मज्योति कभी विलय नहीं होती। बृहदारण्यक श्रुति में जनक जी यज्ञवल्क्य जी से पूछ रहे हैं कि यह पुरुष किस ज्योति रूप वाला है ? यज्ञवल्क्य जी ने उत्तर दिया—'आत्मदेव ही दिन में सूर्य रूप ज्योति से प्रकाश पाते हैं। दिन में सूर्य ज्योति से लोग आना-जाना, उठना-बैठना आदि समस्त व्यवहारिक कृत्यों को करते हैं।' जनक जी ने पूछा कि जिस समय सूर्य - ज्योति नहीं रहती उस समय यह पुरुष किस ज्योति वाला होता है ? यज्ञवल्क्य जी ने उत्तर दिया—चन्द्रमा ज्योति से उस समय पुरुष प्रकाश पाते हैं। सब लोग चाँदनी रात में आना-जाना, उठना-बैठना आदि सारे व्यवहार चन्द्र ज्योति से ही करते हैं। जनक—जिस समय सूर्य, चन्द्र अस्त हो जाते हैं तब पुरुष किस ज्योति से प्रकाश पाते हैं ? यज्ञवल्क्य जी ने उत्तर

दिया—अग्नि ज्योति से। अमावस आदि अन्धकार रात्रि में लोग अग्नि (साधारण काष्ठ अग्नि) व विजली बत्ती आदि ज्योति से ही समस्त व्यवहार करते हैं। फिर, जहाँ सूर्य, चन्द्र, अग्नि नहीं है वहाँ किस ज्योति से व्यवहार होता है? विद्युत ज्योति से। बादल जब रात्रि में आसमान ढक लेता है, तब निर्जन मैदान में विजली से क्षणिक प्रकाश प्राप्त होता है, लोग उससे ही रास्ता देखकर चलते हैं। जहाँ बिजली भी नहीं है और अपने हाथ तक को नहीं देखा जा सकता वहाँ लोग वाक्-ज्योति से ही व्यवहार करते हैं। अन्धकार में गाँव के मैदान में "इस दिशा में आओ" ऐसी आवाज सुनकर ही लोग ग्राम में पहुँचते हैं। जहाँ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वाक्य कुछ भी नहीं है उस समय पुरुष आत्मज्योति से ही सारे जाग्रत स्वप्नादि का व्यवहार करता है। आत्मज्योति से ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वाक्य आदि भौतिक ज्योति बाहर प्रकाश पाती हैं। फिर आध्यात्मिक ज्योति से ही अन्तर बाहिर प्रकाशित होता है। मूल ज्योति आत्मा की ही है। आत्मा छोड़कर और किसी का स्वतन्त्र प्रकाश या ज्योति नहीं।

जैसे, सिनेमा में मूल बिजली के ही प्रकाश से सर्व प्रकार की फिल्म की रोशनी जो कुछ सामने आ रही है प्रकाशित होती है। फिल्म अपने आपको प्रकाशित कर नहीं पाती, बिजली की रोशनी पीछे है इसलिये फिल्म प्रकाश पाती है और बिजली की रोशनी अपने आप प्रकाशित होती है। रोशनी को प्रकाश करने के लिये दूसरे प्रकाशकी आवश्यकता नहीं होती वह स्वयं प्रकाश करती है। पर्दा भी बिजली की रोशनी से ही फिल्म सहित देखा जाता है। परन्तु जिस प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित हो रहा है उस मूल रोशनी का ख्याल

नहीं रहता। ऐसा ही इस मनीराम के चिन्तन का फिल्म प्रकाशित हो रहा है, स्वयंप्रकाश साची की ज्योति से ही। परन्तु मूर्ख लोग जब राग-द्वेष युक्त मनीराम के खेल में आकृष्ट हो जाते हैं तब मूल साची प्रकाश जिसके सहारे से देह, प्राण, मन, वुद्धि आदि सब कुछ खेल रहे हैं, उसको ही देख नहीं पाते।

मनुष्य थोड़ी सी विचार दृष्टि करे तो, संसारी दुःख, राग-द्वेष सारे अनर्थों रहित होकर सदा आनन्द में मग्न रह सकता है। विचार तीन दृष्टिकोणों से हो सकता है (१) कर्म दर्शन से (२) भक्ति दर्शन से (३) ज्ञान दर्शन से, मनुष्य जब अत्यन्त अविवेकी रहता है तब मानता है-फलाना मनुष्य या फलानी वस्तु मेरे दुःख का कारण है लेकिन ठीक कर्म मीमांसा के अनुसार विचार किया जाय तो देखा जाता है, कि बाहर का कोई भी मनुष्य या वस्तु अपने दुःख का कारण नहीं। पाप ही दुःख के कारण हैं। इस जन्म वा पूर्वजन्म के अपने पाप पुण्य ही दुःख सुख के कारण हैं। जैसे कोई माने कि चोर को राजा कैद, सजा या दुःख दे रहा है वास्तविक चोर अपने कर्म से ही दुःख भोग रहा है राजा ने सबके कल्याण के लिये ही कानून बनाया और चोर अपने कर्मानुसार कैद भोग रहा है ऐसी अपनी विचार दृष्टि होने से संसार में अँनर्थ विषमतावाद, नरक, दुःख भोग और शत्रु हो नहीं सकते जगत् स्वर्ग भूमि बन सकता है लेकिन मनुष्य अपने अविवेक के कारण दो टाँग वाला कुत्ता बन जाता है। कुत्ता जैसे फेंके हुए पत्थर को अपने दुःख का कारण मानता है और पत्थर के पीछे दौड़ता है, जिस मनुष्य ने पत्थर छोड़ा उसको तो देखता ही नहीं। लेकिन बन्दर उस मनुष्य को ही पकड़ता है, पत्थर के पीछे नहीं दौड़ता। ऐसा ही

विवेकी पुरुष अपने दुःख के कारण अपने पूर्व कर्मों को ही मानता है। वाहर के मनुष्य या वस्तु जिसके माध्यम से दुःख मालूम होता हैं उसे अपने दुःख का कारण मानता नहीं। इसलिये उनके साथ किसी के राग-द्वेष या शत्रुता नहीं होती। भक्ति-दर्शन से देखा जाय तो भी वाहर की कोई वस्तु या मनुष्य अपने दुःख के कारण नहीं, ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता है, उसके आदेश के विना एक वाल भी हिल नहीं सकता। अतएव जो कुछ हो रहा है सब उनके आदेश या प्रेरणा से ही है। वाहर की कोई भी वस्तु या मनुष्य दुःख-सुख का कारण नहीं। और भी ईश्वर मंगलमय है, अतएव दुःख भी आ जाय तो जानना चाहिये कि यह अन्त में हमारे मंगल के लिये ही है। वचपन में पिता या आचार्य जो वालक को मारते हैं, वह शत्रुतापूर्वक नहीं, परन्तु भविष्य में मंगलप्राप्ति के लिये ही दण्ड देते हैं। इस विचार से दुःख निवृत्त हो जाता है।

ज्ञान दृष्टि से देखे तो दुःख, मन की एक अवस्था मात्र है। वास्तव में आत्मा को दुःख सुख स्पर्श नहीं कर पाते, मन भी वहाँ तक पहुँच नहीं सकता तो वाहर की वस्तु कैसे पहुँचेगी ? अंग्रेज कवि मिल्टन नरक के Satan के मुँह से बोल रहा है–'Mind in itself can make a Heaven of Hell or Hell of Heaven।'अपना मन ही स्वर्गमें नरक और नरक में स्वर्गकी सृष्टि करता है। दुःख सृष्टि के कारण अपना वहिर्मुखी मन, आत्मा सदा आनन्द स्वरूप, अन्तर्मुखी वृत्ति प्रतिफलित होकर सुखरूप भासता है। मनुष्य को चाहिए सदा सुख, अतएव यदिच्छा लाभ संतुष्ट होकर अपना द्रष्टा स्वरूप में सदा मग्न रहे।

वेद का अर्थ विद् धातु अर्थात् ज्ञान है। सारे विश्व के व्यवहारिक, वैदिक (कर्म - उपासना) व पारमार्थिक ज्ञान के भण्डार वेद हैं। यहाँ अलौकिक व अपौरुषेय अर्थात् अतीन्द्रिय अलौकिक विषय में, जहाँ प्रत्यक्ष, अनुमानादि कोई भी प्रमाण काम नहीं करता, उस परमार्थ तत्व विषय में वेद व श्रुति एकमात्र प्रमाण हैं। यह वेद किसी पुरुष के परिछिन्न बुद्धि प्रसूत नहीं, श्री भगवान् के स्वाभाविक रूप से निःश्वासवत् प्रकटित हैं। दृश्यमान् सूर्य-चन्द्र आदि सृष्ट पदार्थ कल्प कल्प में एक ही रूप में कैसी कल्पित सृष्टि हो रही है, यह बात जीव-बुद्धि आरूढ़ कराने के लिये ही अपने ज्ञान ऐश्वर्य के भण्डार मूर्तिमान वेद भगवान् का प्रकाश है। वेदों का एक अक्षर भी परिवर्तन नहीं हो सकता। जहाँ लौकिक बुद्धि या व्याकरण के अनुसार संगत व्यवहार कर नहीं सकता, वहाँ वैदिक प्रयोग, छान्दस् एवं पाठान्तर रूप में रखा जाता है। समस्त व्याकरण वेदों से निकला सुतरां वेदों को कैसे अस्वीकार करेगा? सोने का गहना (हार चूड़ी आदि) सोने को अस्वीकार नहीं कर सकता, अस्वीकार करने से अपना ही अस्तित्व लोप हो जाता है। ऐसे ही इस विश्व के जीव, वृक्ष, सूर्य, चन्द्रमा, व्याकरण, ज्योतिष, समस्त स्मृति आदि वेद भगवान से ही निकले; अतएव वेदों को अस्वीकार करने से अपना अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि में-कल्प-कल्प में अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, व्यास, वसिष्ठ आदि ऋषि और सूर्य-चन्द्रादि सृष्ट हो रहा है। आज अभी जैसे देखा जाता है पूर्व कल्प में ठीक ऐसा ही रहा। इस विषय में एक दिन एक विशिष्ट महात्मा के साथ उत्तराखण्ड में गङ्गा जी के किनारे विचार हो रहा था। महात्मा के मन में कुछ

सन्देह हुआ—"आज जैसे इस समय देख रहा हूँ, इसके पूर्व कल्प में कैसे ऐसा ही रहा होगा, वेद में भी थोड़ा बहुत अत्युक्ति है।" झट से ईश्वरेच्छा से मेरे अन्दर एक दृष्टान्त आ गया, मैं अनुभव करता था मेरे अन्दर कोई दूसरा Prompt कर रहा है। मैंने कहा मनुष्य-समाज में सिनेमा आदि में देखा जाता है कि आज छः बजे से ९ बजे तक जैसा-जैसा खेल होता है दूसरे दिन भी उसी तरह उसी समय पर ठीक वैसा ही खेल देखा जाता है, जरा सी भी विषमता नहीं होती। जब अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान मनुष्य ऐसा कर सकता है तब सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर कल्प-कल्प में अनुरूप कल्पित सृष्टि क्या नहीं कर सकता। उस महात्मा का उस दिन से वेद भगवान् के ऊपर पूर्ण विश्वास हो गया। सनातन, अविनाशी वेद कभी लुप्त नहीं होगा, विचित्र संसार के अनुसार कभी सर्वत्र प्रचार हो जाता है और कभी सीमाबद्ध अल्प व्यक्तियों के अन्दर वेद गुप्त रूप से रहता है। कोई २ तो अपनी बुद्धि के अनुसार वेदों को इतना सम्मान नहीं देते, बोलते हैं कि जैसे बिजली की पुस्तक (Book of Electricity) बिजली नहीं है, बिजली (Electricity) तो और पदार्थ है। बिजली की किताब में बिजली के ज्ञान की शिक्षा दी जाती है, ऐसे ही वेदों के कागज़, स्याही, अक्षर ब्रह्म नहीं, ब्रह्म तो वेदों से लक्षित मात्र है। कोई बोलता है कि मैं ही ब्रह्मज्ञानी हूँ, मेरे मुँह से जो बात निकलेगी वही वेद है। वेद उपनिषद् तो पण्डित लोगों की तोता जैसी बोली है। ब्रह्मज्ञानी को वेद से कोई मतलब नहीं, यह बात मानने योग्य है। श्री भगवान भी बोल रहे हैं-"त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" वेद तीनों गुणों का विषय है अरे अर्जुन तू गुणातीत हो,

परन्तु व्यवहार में ठीक भगवान बोल रहे हैं—"गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे परमं तप" यह वैदिक रहस्य समझने के लिये अपने को भगवतत्सदृश बनना पड़ेगा, हृदय से राग-द्वेष सर्व परिच्छिन्न भावना दूर करके सारे विश्व के साथ एकत्वबोध अनुभव करना पड़ेगा। शम, दम आदि साधन चतुष्टय सम्पन्न जो नहीं है, जिसका आचरण मनुष्यत्व की कोटि तक नहीं, उसका "मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ" बोलकर परिचय देना, वैदिक रहस्य को न जानकर अज्ञानता का ही परिचय है। वेद साक्षात् भगवत्वाक्य, निःश्वासरूप स्वाभाविक ही प्रकट है। यदि भगवत् तत्त्व को कुछ सीमातक आभास देकर लक्षण किया जा सकता तो एकमात्र वेद उपनिषदों की वाणी ही लक्षण कर सकती। वेद-विहीन ब्रह्मविद्या व भगवत्तत्व स्वासहीन मृत शरीर तुल्य, अन्तः सारहीन, जल्पना मात्र। विष्णु अवतार श्री भगवान वेदव्यास ने अपनी तपस्या से अनादि नित्य वेद भगवान् को सङ्कलन करके चार भाग में विभक्त किया :— ऋक्, साम, यजुः अथर्व। प्रत्येक वेद तीन २ काण्ड में विभक्त हैं, (१) कर्मकाण्ड यज्ञ, दान आदि, (२) उपासना काण्ड—पूजन उपासना आदि, (३) अन्तिम काण्ड वेदान्त ज्ञानकाण्ड अपने स्वरूप का परिचय है प्रथम दो काण्ड साधन और अन्तिम काण्ड साध्य। मन्त्र, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद, श्रुति आदि भिन्न भिन्न शाखा के अनुसार वेदान्त को ही कहा जाता है। जैसे स्वास त्याग करके मनुष्य जीवित नहीं रहता है, वैसे ही वेद छोड़ कर भगवान् उपासना काण्ड, ज्ञान (लौकिक व पारमार्थिक) सब कुछ अन्तसारशून्य मिथ्या आडम्बर मात्र है। वैदिक कर्मकाण्ड व उपासना काण्ड से जो घृणा करता है, व्यवहारिक जगत् में

शम,दम, उपरति,तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान जिसके हृदय में परिनिष्ठित नहीं, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्तेय, अपरिग्रह, शौच, संतोष तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, काय-मन-वाक्य से अकपट रूप में पालन करते करते जबतब अपना अन्तःप्राण व अन्तःकरण स्वाभाविक क्रियावत् नहीं हो गया, तबतक यह ब्रह्मविद्या परोक्ष ही रह गई। जबतक सत्संग आदि कर रहा है तबतक शान्ति आनन्द अनुभव होता है, पीछे जैसे का तैसा है, भैंस व गधे को स्नान कराने का माहात्म्य या शैवालयुक्त तालाब में पत्थर निक्षिप्त जलदर्शन के माफिक क्षणिक सुख सौन्दर्य उपभोग करता है। भित्तिहीन गृहमें जैसे कोई मूर्ख गृहस्थ ऊपर की मंजिल पक्की, मजबूत, बनाना चाहता है, भित्ति जिसकी पक्की नहीं वह कबतक खड़ी रहेगी ? अजीर्ण के रोगी के पेट में कैसे मूल्यवान गरिष्ट भोजन हजम हो ? यह सब अनिष्ट के ही कारण हैं। अनधिकारी व स्वार्थी पंडित वेद का दुरुपयोग करे वा विक्रय करे इसके पतन के लिये वेद भगवान् जिम्मेदार नहीं हैं।

ध्यान क्यों करूँ ? इससे क्या लाभ ? उत्तर-मन और बुद्धि को अन्तःकरण कहा जाता है, अन्तःकरण अर्थात अन्दर के Instrument; जैसे कहीं भी मशीन मोटरकार ३०-३५ साल की गारन्टी देने पर भी रोज उसको साफ करना पड़ता है, तेल पिटरौल मोबिलायल डालना पड़ता है, विश्राम देना पड़ता है तब वह मशीन सुन्दर रूप से यथायोग्य काम करती है। वैसा ही इस शरीर के अन्दर मन बुद्धि चौबिस घन्टे विषय का काम नहीं कर सकती। इस दिन रात चौबिस घन्टे के अन्दर कभी मानसिक आहार अर्थात उच्च मनुष्यत्व के वा देवत्व की सदभावना, कभी सर्व चिन्ता मुक्त

(Vocant mind) कभी श्री भगवान के आनन्द रूप में मग्न, कभी अखण्ड सुषुप्ति में लय, कभी विश्व के समस्त प्राणियों में प्रसारण करने पर मन बुद्धि स्वस्थ व सबल रहते हैं। कोई मनुष्य २४ घन्टे के अन्दर न सोये और सदा काम करता रहे तो देखिये दूसरे दिन उस व्यक्ति का मन काम करने के लायक स्वस्थ रहता नहीं क्रमशः मन दुश्चिन्ता या आशंका ग्रस्त हो जाता है, मन की एकाग्रवृत्ति नष्ट हो जाती है, स्मृति शक्ति भी नष्ट हो जाती है। और वहां मन काम के लायक नहीं रहता। इस लिये भगवान् २४ घंटा के अन्दर मध्य रात्रि में ६-७ घंटा गाढ़ी निद्राका नियम रखा है, गाढ़ी नींदमें मनको उद्विग्नता दुश्चिन्ता आदि (Agitation & anxities are unloaded in deepsleep) से मुक्त होकर वह ईश्वर स्वरूप कारण एकत्व में लय हो जाता है फिर मनुष्य स्वस्थ(Refreshed)होकर दूसरे दिन कामके लायक हो जाता है। ध्यान(Meditation)सिर्फ आध्यात्मिक जगत की उन्नति के लिये ही: नहीं अपितु भौतिक जगत में भी ध्यान जात एकाग्र वृत्ति छोड़कर कोई वास्तविक या आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता, संसार में सुख नहीं ले सकता। व्यवहारिक कर्म-जीवन में उन्नति नहीं कर सकता। मन के अन्दर विशृंखलता, उद्विग्नता, दुश्चिन्ता आदि भरी रहती है तब अपने दफ्तर में भी दो घंटे का काम आठ घंटे में भी नहीं कर सकता और मन में स्वस्थता, एकाग्रवृत्ति (concentration) रहे तब आध घंटे का काम दो घंटे में समाप्त हो जाता है। उसका Boss प्रसन्न होकर थोड़े दिन में प्रोमोशन देता है। अपने अन्दर आनन्द एवं शान्ति रहे तो वह व्यक्ति अपने संसार में स्त्री-पुत्र आदि सब को शांति व आनन्द दे सकता है। जो उसके

पास आते हैं सब आनन्दित हो जाते हैं। इसलिये अपने भौतिक जगत् की उन्नति-सुख शांति के लिये भी ध्यान, एकाग्रवृत्ति प्रातः-काल में कुछ देर तक अभ्यास करके तब अपने सांसारिक व कर्म जीवन में प्रवेश करना चाहिए। सुषुप्ति में भगवत् नियमानुसार जीव के अज्ञातसार में मन लय होकर सर्व-दुष्चिन्ता विनिर्मुक्त होता है। परन्तु जाग्रत अवस्था में मन की चंचल वृत्ति-दु-र्भावना, आशंका अपनी उन्नति के पथ में बाधा डालती है। उस समय मन को सर्व-भार विनिर्मुक्त ताजा रखने के लिये, उन्नति के पथ में शान्त होकर चलने के लिये कुछ समय तक प्रातःकाल में ध्यान का अभ्यास अत्यावश्यक है। सम्मुख लड़ाई में कभी-कभी बुद्धिमान कुशल सेनापति स्थान व परिस्थिति भेद से फौजों को पीछे हटने का आदेश देता है, इसका मतलब पिछड़ने का नहीं, बल्कि अपने स्थान पर शक्ति सञ्चय करके शत्रु की प्रतिकूल परिस्थिति में जय लाभ करने के लिये ही है। ऐसे ही सर्व सङ्कल्पहीन ध्यान का उपदेश मनुष्य को कर्महीन पंगु बनाने के लिये नहीं बल्कि ध्यान के अन्दर मन को पूर्ण रूप शक्ति-शाली, सूक्ष्म ऐश्वर्यवान बनाकर अपने कर्मक्षेत्र में जय, लाभ व उन्नति करने के लिए ही कुछ देर तक इस सविकल्प व निर्विकल्प समाधि, सम्यक् ध्यान में स्थित होना पड़ता है। अपने एकान्त घर में स्थिर व सुख से कुछ देर तक एक भाव से बैठा जाए, ऐसे आसन में—पीठ के मेरुदण्ड ग्रीवाँ व मस्तक सीधा रखकर हस्तद्वय शृङ्खलाबद्ध करके अपनी गोद में और चक्षु बन्द अवस्था में बैठना चाहिये। हस्तद्वय शृङ्खलाबद्ध का अर्थ—कर्म के प्रधान कारण हाथ हैं। हस्त-बद्ध से कर्म प्रवृत्ति की चंचलता स्तब्ध हो जाती है। और चक्षु में

जाग्रत् अवस्था की सारी चेतनता, जिससे कर्म - चंचल प्रवृत्ति उठती है अतएव ध्यान कालीन चक्षु मुंदित करना शास्त्र के उपदेश हैं तथा शीघ्र एकाग्र वृति के अनुकूल है और मेरु रज्जु से मस्तिष्क तक मन के प्रधान स्थान हैं। इसलिए शरीर को सम व सीधा रखना पड़ता है। कुछ देर तक सामान्य मात्रा में प्राणायाम करने से मन बहुत शान्त होता है। लेकिन मन के प्रधान अन्तराय अपना व्यवहार दशा में दुश्मन की छवि है। अपना आफिस व कई कर्म क्षेत्र में व्यवहार के समय प्रतिकूल आचरण करना पड़ा, परन्तु महा प्रकृति के नियम के अनुसार वह छोड़ता है, सूक्ष्म रूप में उदार, शुद्ध-चित्त व्यक्ति के ध्यान अवस्था में वह हाजिर होता है, इसलिये ध्यान के समय यह भावना करना उचित है :— दुनिया में हमारा कोई दुश्मन नहीं, एक परमपिता ईश्वर की हम सब सन्तान हैं। उनसे आया हूँ फिर उनमें मिलूंगा, व्यवहार के लिए हमको उसके साथ ऐसा बोलना पड़ा, हे सर्वेश्वर हे सर्वव्यापी परमात्मन् मुझे क्षमा करो और उस ध्यान के साथ - साथ उस शत्रु के लिये प्रेम भावना (Love current) भेजने से मन शीघ्र ही शुद्ध व शान्त होता है। मन को बश करने के लिये और एक उपाय है। मनको समझना चाहिए नौकर और मैं मन का प्रभू हूं। नौकर को प्रभू सत्ता व वेतन का रुपया देता है, उस सत्ता के बल से वह काम करता है। रुपया न देने से नौकर काम नहीं कर सकता। वह प्रभू की सत्ता से ही काम करता है। ऐसा ही ध्यान में मन के संकल्प विकल्पादि को जब हम सत्ता देता हूं वा आसक्ति के कारण देखता हूं तब मन काम संकल्प आदि करता है। हम अपने मन को नौकर समझ कर उपेक्षा करें तो

थोड़े ही दिन में मन अपने वश में होजाता है। और भी मन के चंचल भावों को न देख कर अपने स्वरूप की ओर शान्त हो कर बैठे तो थोड़े दिन के अन्दर ही मन नष्ट होजाता है। इस रूप से साधक अपने आनन्द स्वरूप में मग्न हो सकता है।

ईश्वर निर्भरता, समाधि-सिद्धि लाभ का प्रधान उपाय है। पिता जैसे बालक से अच्छा जानता है, बालक की कैसे उन्नति होगी? उसके मंगल के लिये क्या आवश्यक है? ऐसे ही सर्वज्ञ परमपिता मनुष्य के व्यष्टि बुद्धि विचार से अच्छा जानता है। क्या करने से साधक की उन्नति व मंगल होगा। माण्डूक्योपनिषद् में देखा जाता है—ओंकार के तृतीय पाद, प्राज्ञ वा ईश्वर सुषुप्ति अवस्था "एकीभूत आनन्दमय" ईश्वर के क्षेत्र हैं। इसलिये गाढ़ी नींद में जाने से ही सर्व प्रकार क्लान्ति मिट जाती है, नवजीवन शक्ति और स्वस्थता मिलती है। उसके देह, प्राण और मन में एक नवचेतना का स्पंदन अनुभव होता है। साधारण मनुष्य इस सुषुप्त अवस्था में अज्ञातसार से मूढ़ होकर पड़ा रहता है और योगी लोग समाधि में इस आनन्द को ईश्वर के साथ एकीभूत होकर ज्ञातसार से उपभोग करके आनन्द-स्वरूप में मग्न होता है।

कोई वस्तु जब गरीब प्रजा राजा के पास सम्मान से उपहार देता है तब राजा उस १०) की वस्तु के लिये सन्तुष्ट होकर एक सौ रुपया पुरस्कार देता है। प्रकृत बड़े आदमी का आश्रय लेने से कभी हानि नहीं होती। बड़े वृक्ष का आश्रय लेने से दैवक्रम से कभी फल नहीं मिले तो भी छाया सदा के लिये अवश्य मिलेगी। ऐसे ही ध्यान के समय अपना सारा मानसिक चिन्तन, बाहर की समस्त सम्पत्ति,

समष्टि मन व ईश्वर चरण में अर्पण करके शान्त होकर बैठ जाए तो इससे हानि होती ही नहीं। ईश्वर तवतक समस्त सम्पत्ति—देह, प्राण और मन की रक्षा करेंगे। ईश्वर अर्पण बुद्धि से कभी हानि नहीं होती, अपितु देह, प्राण, मन में एक नवजीवनी-शक्ति का संचार होगा जिससे तुम शान्ति और आनन्द से अपनी और विश्व की उन्नति करके सफल और सार्थक जीवन बिता सकते हो। इस मन शुद्धिके वाद ध्यानमें और अन्तरंग साधन है, वाहर में जैसे सावुन तेल आदि से शरीर को साफ किय जाता है, वैसे ही अन्दर शुद्ध करने के लिये शुभ ज्योतिर्मय चिन्ता धारा (thought current) से धीरे धीरे मस्तक से पदतल तक आन्तरिक संचारधौत करना पड़ता है। इस ज्योतिर्मय अन्तर्धौत से शरीर में एक दिव्य सुख का स्पर्शानुभव होता है। वह स्वेद विन्दु के ऊपर सुख-समीरण स्पर्शवत् अनुभव होता है। पश्चात् अपना मेरु-रज्जु (spinal chord) के निम्न भाग से षट् चक्र में धीरे धीरे मन को धारण करना पड़ता है। एक एक चक्र में मन को धारण करने से बहुत सी सिद्धियां, व्यवहारिक वस्तु लाभ, अनेक प्रकार के देवदर्शन, दूरदर्शन, दूरश्रवण, अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। मूलाधार चक्र में मन स्थित होकर ज्योति वा देवदर्शन करने से अपने मन से कामादि भाव विलुप्त हो जाते हैं। नाभि चक्र में मनः स्थित होने पर साधक भूख प्यास व निद्रा को जीत लेता है। हृदय में स्थित होने पर सारे संकल्प के ऊपर आधिपत्य आ जाता है। गुरु उपदेश के अनुसार हृदय और भ्रूमध्य मन धारण करने के लिये श्रेष्ठ स्थान है। हृदय और भ्रूचक्र में ज्योतिर्मय ओंकार, राम, कृष्ण, देवी आदि कोई भी देवता, जिसमें

अपना प्रेम हो, उसमें वह निरन्तर अभ्यास करे तो एकतान ध्यान लगता है। जितना ध्यान गंभीर होता है उतना ही अपने शरीर को साधक भूल जाता है। ध्येय वस्तु मात्र अवशिष्ट रहती है। इसकी परिनिष्ठित अवस्था को समाधि कहते हैं। धारना, ध्यान, समाधि (Concentration, Cnotem plationa nd meditation) को पातंजल योगदर्शन में संयम कहते हैं। यह संयम जितना सहज सरल वा आयत्ताधीन होगा, उतना ही सारी सिद्धि, दूरदर्शन, दूर-श्रवण परचित्तज्ञता, पूर्वजन्म ज्ञान, अनिमा, लघिमा आदि अष्ट सिद्धियां करतल गत होंगी। सब जड़ वा चेतन प्रकृति उस योगी के वशीभूत होगी। व्यवहार जगत् में भी बुद्धि की तीव्रता, भूत, भविष्यत् का ज्ञान हो जाता है।

पूर्वकथित प्राणायाम के धीरे-धीरे अभ्यास से हृदय फुसफुस के सारे रोग हट जाते हैं, हृदय फुसफुस सबल व दीर्घायुः होता है। पहले ४, १६, ८ के अनुपात समय से पूरक, कुम्भक व रेचक, अर्थात् वायु शरीर में पूर्ण करना, रोकना व छोड़ देना। एक नाक से लेना पड़ता है, दूसरे से छोड़ना पड़ता है। यह प्राणायाम सहज व अभ्यास होने से दैवी प्राणायाम स्वाभाविक रूप से चलता है; कंठ में एक मधुर आस्वाद सदा के लिए अनुभव होता है। योगी लोग पाँच घन्टे तक कुम्भक में बैठकर सर्व सिद्धि प्राप्त करते हैं।

प्रणव उच्चरण से सारा पाप व विघ्न नाश होता है। प्रणव सर्व वेद, सब प्राणी व सारे विश्व का आदि मूल व प्रधान ध्वनि है। जो बाहरी शब्द हमारी ध्यान कालीन एकाग्र धारा वृत्ति को छिन्न कर देते हैं, वह भी प्रणव ध्वनि से मन की एक प्रवाह धारा मान

लेना चाहिये। सब जीवों के मूलाधार से जो शब्द उठता है वह स्वाधिष्ठान, नाभि, अनाहत विशुद्ध चक्र में क्रम से आद्रता, उष्णता, वायु नाना रूप संकल्प लेकर नाना रूप व शब्द से प्रकाश पाता है। लेकिन जो कुछ शब्द हो रहा है वह सब प्रणव से ही प्रकट है। ऐसा जब अभ्यास योग में परिणत होता है तब अन्दर बाहर के शब्द का एकाकार बोध होगा। सब चैतन्य सत्ता व ज्ञान अपरिछिन्न स्वरूप में 'मैं ही मैं हूँ' अनुभव होगा। इस दिव्य, शान्त, प्रसन्न अवस्था में जितना देर तक निर्विकल्प अर्थात् व्यवहारिक चिन्ताशून्य आनन्द स्वरूप में बैठ सके उतना ही मंगल है। पीछे धीरे धीरे शान्त व मधुर स्वर से बोलता रहे—मन-बुद्धि-अहंकार—चित्तानि नाहं चिदानन्द रूपो शिवोऽहं शिवोऽहम्। असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः। अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो विभुत्वात्।"

संयम रूप समाधि प्रज्ञा की मूलाधार में प्रयोग करने से स्थूल भूताधिपत्य सिद्धि आ जाती है। योगशास्त्र में इसको वितर्क समाधि कहते हैं। वितर्कणा अर्थात् विशेषण आवधारणा पंच स्थूलभूत का विशेष ज्ञान होता है। जब इस वितर्क समाधि का आलम्बन परिपार्श्विक अवस्था के साथ अर्थात् विराट रूप में "अग्निर्मूर्धा चक्षुषीचन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः वायुःप्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवीह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।" समष्टि स्थूल दृश्यमान—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी में एकाकार बोध होने से सवितर्क समाधि कहते हैं, और यह विराट् रूप भी जब मिट जाता है, तन्मात्र रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श मात्रा में जब समाधि लगाता है तब उस समाधि को निर्विचार अनुगत समाधि कहते हैं। समप्रज्ञात समाधि चित्त के

आलम्बन भेद से चार प्रकार---वितर्क अनुगत, विचार अनुगत, आनंदानुगत और अस्मितानुगत; विषय प्रकृति भेद से वितर्क-विचार समाधि चार प्रकार---सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार-यह सब ग्राह्यनिष्ठ समाधि; वुद्धि आलम्बन होने से आनंदानुगत समाधि व ग्रहणनिष्ठ समाधि कहते हैं। चतुर्थ ध्यान अस्मिता मात्र संविदा-लम्बन, आनन्द के भी मैं ज्ञाता, मैं प्रत्यय सदा रहता है, इसीलिये बुद्धि से भी अस्मिता की आनन्द स्थायी है। इसको ग्रहतृनिष्ठ समाधि कहते हैं।

संयम समाधि प्रज्ञा के आलंबन सूक्ष्ममहाभूत तथा इन्द्रिय होने से विचार अनुगत कहलाते हैं। 'विशेषेण चरणं सूक्ष्मवस्तु पर्य-न्तम्' जब पारिपार्श्विक सूक्ष्म अवस्था अर्थात् हिरण्यगर्भ में तैजस एकाकार हो जाता है तव इसी समाधि का नाम सविचार रखा जाता है और जब समस्त आलम्बन, समस्त सिद्धिवासना, अन्त:करण के समस्त उपाधि धर्मों को छोड़कर साधक द्रष्टारूप में स्वस्वरूप में स्थित होता है। कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि सारे परिछिन्न भाव मिट जाते हैं। असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात् व्यवहारिक व प्रातिभासिक किसी भी पदार्थ का सम्यक् ज्ञान नहीं रहता है। कैवल्य या निर्वाण प्रारब्धाभास - शून्य विदेहमुक्ति भी इसको कहते हैं। असम्प्रज्ञात समाधि अनन्तर जीवन्मुक्त की वुत्थित दशा में कई कई बाधित अनु-वृत्य रूप में ज्ञानी की बाध समाधि एवं समाधि काल में ज्ञानी की लय समाधि कहते हैं।

सर्व भावान्तस्थाय चैत्यमुक्त - चिदात्मने।
प्रत्यक्चैतन्यरूपाय मह्यमेव नमो नमः॥
❀ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ❀

(१) साक्षात् शिवस्वरूप श्री श्री १०८ स्वामी ततोवन जी महाराज बहुत साल से उत्तर-काशी गंगोत्री में विराज रहे हैं। इनकी तपोनिष्ठा गंगा माता की प्रति भक्ति, कठोर वैराग्य व अद्वैत वेदांत का सिद्धान्त, समस्त हरद्वार ऋषिकेश के साधु, वैराग्यवान गृहस्थ तथा मुमुक्षु हृदयों को पूर्व से ही गुणमुग्ध करके रखा था (Divine life) के स्वामी शिवानन्द महाराज भी इनके पास पहले ही आकर शिक्षा लाभ किया था। परम वैराग्यवान स्वामी तपोवन जी महाराज ऋषिकेश की जनसंख्या-वृद्धि होने के कारण ३०–४० साल पहले ही ऋषिकेश त्याग करके उत्तर-काशी, गंगोत्री व गोमुख के ऊपर तपोवन नन्दन कानन इत्यादि स्थानों में एकान्त में ध्याननिष्ठ रहते थे। अधुना ग्रीष्मऋतु में ३–४ महीना गंगोत्री अवशिष्ट समय उजेली, उत्तर-काशी में एकान्त ध्याननिष्ठ में आनन्द मग्न रह कर काल व्यतीत कर रहे हैं। आज शरीर अन्यन्त वृद्ध होने पर भी समस्त साधु समाज अवनत मस्तक से उनके पास उपस्थित होकर ब्रह्म विचार में आनन्द मग्न हो जाते हैं। नवीन संन्यासी नव उत्साह से उद्दीप्त हो कर अपना जीवन सफल कर रहे हैं। प्रति वर्ष हजारों सब प्रकार के शिक्षित तीर्थ यात्री उदार स्वामी जी के दर्शन करके अपना जीवन धन्य मानते हैं।

(२) महा मण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी विष्णु देवानन्द जी महाराज ६०-७० साल पहले जब बालसंन्यासी-रूप में ऋषिकेश, कैलास आश्रम में आये थे तब गुरू जी उनके वेदान्त-दर्शन में अपूर्व तीक्ष्ण धी शक्ति देख कर बोले थे कि, "तुम सप्तऋषि के एक ऋषि होकर स्वर्ग से इस भोग भूमि मृत्युलोक में किस लिये आगया ?" आज भी लाखों रुपया

का आश्रम छोड़कर उत्तर-काशी में ब्रह्मसूत्रादि अध्यापन कराते हुए एकान्त में विराजते हैं। वस्तुत: वैराग्य ही महात्मा का भूषण है। एक दिन ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज जी ने कड़ोरों रुपया अस्वीकार करके कथा प्रसंग में शिष्य को जवाब देते हुए कहा कि "करोड़ों रुपया देने वाले विश्व में बहुत हैं, परन्तु करोड़ों रुपया अस्वीकार करने वाले एक ही दो होते हैं।

(३) अवधूत श्री स्वामी विष्णुदत्त जी महाराज ४०-४५ साल से उत्तर-काशीं (गंगोत्री) में नग्न अवस्था में देहाध्यास रहित होकर गंगा जी के उस पार में ग्राम से शास्त्रोक्त स्वहस्त भिक्षावृत्ति में रहकर तपोमग्न हैं। शत-शत तीर्थयात्री इनके दर्शन से ही सफल मनष्काम होते हैं। उनकी उपदेश वाणी--"ॐकार स्वरूप परमात्मा है, वही विश्वात्मा सूर्य रूप से समस्त जगत् प्रकाश कर रहे हैं-"योऽसावसौ पुरुष: सोऽहमस्मि" अनुभव करके आनन्दमय हो जाओ।"

(४) पूर्ण वैराग्य, भक्ति व ज्ञान की मूर्ति अवधूत श्री रामानन्द (छोटा) जी महाराज अभी कुछ साल से स्थायी रूप में शीत ऋतु में भी नग्न अवस्था में १२-१४ फुट वरफ के नीचे समाधिनिष्ठ रहते हैं, पहले उत्तर-काशी में आनन्दमग्न विराजमान थे। उनका आशीर्वाद या उपदेश वाणी :—

ॐतत्सत्-अथ-अपने आपको पहचानने के लिये वेदान्त का ही उच्च सिद्धान्त है। मैं कौन हूँ ? मेरा परमार्थ स्वरूप क्या है ? ऐसे अपने शुद्ध चित्त से उपाधि रहित परमार्थ स्वरूप जानकर क्लेशशून्य आनन्दपूर्ण हो जाओ, जिससे ग्रन्थकर्त्ता का परिश्रम भी सफल हो। हरि ॐ तत्सत्—अथ—अपने ही शक्ति से, अपने भूल हो गया।१। जाना भिन्न अपने से, आपको ये भूल हो गया।२। वेदान्त विचार से द्वैत भ्रम छूट गया।३। रामानन्द अवधूत, आनन्द सिन्धु हो गया।४।
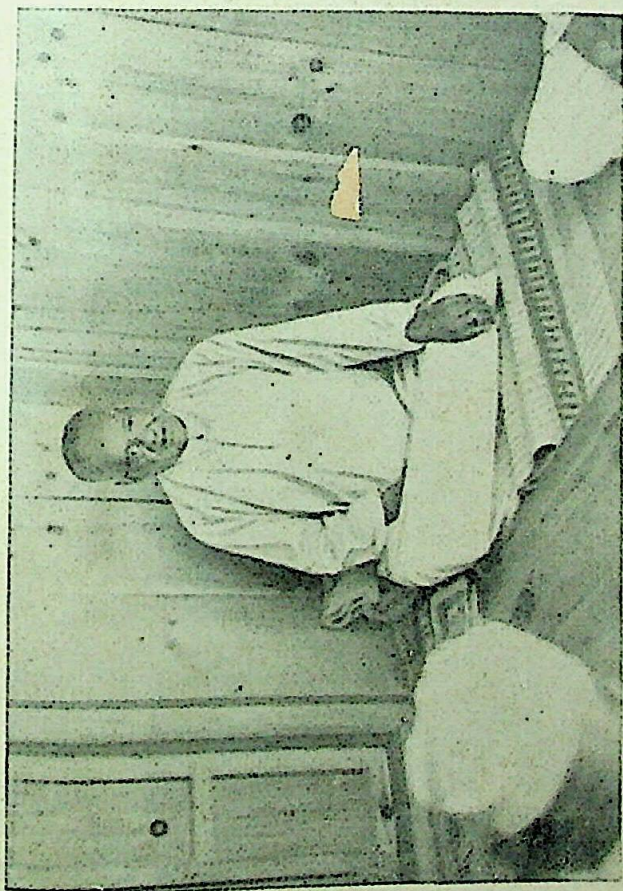
साक्षात शिवस्वरूप श्री स्वामी तपोवन जी महाराज,

गंगोत्री, उत्तर - काशी ।

प्रतिवर्ष समस्त भारतवर्ष हरिद्वार व ऋषिकेश के सब प्रकार के शिक्षित हजारों तीर्थ यात्री इनका दर्शन करके अपना जीवन धन्य मानते हैं।
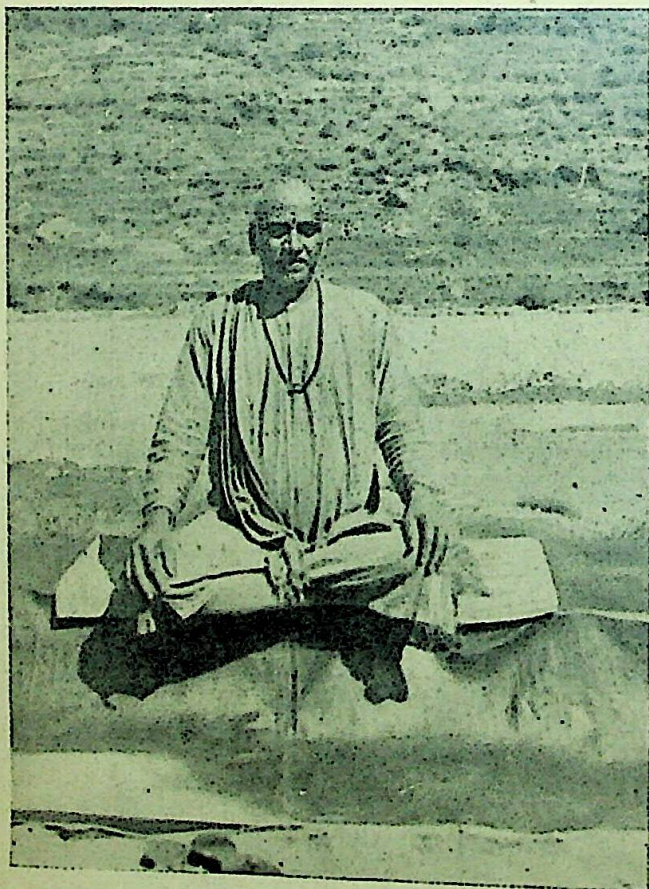
मण्डलेश्वर श्री विष्णु देवानन्द जी महाराज

उत्तर – काशी, कैलाश आश्रम।

बाल्य में ब्रह्मसूत्रादि शास्त्रों में इनकी तीक्ष्ण धी शक्ति व वैराग्य देखकर इनका गुरुजी सप्तर्षि के एक ऋषि कहते थे।
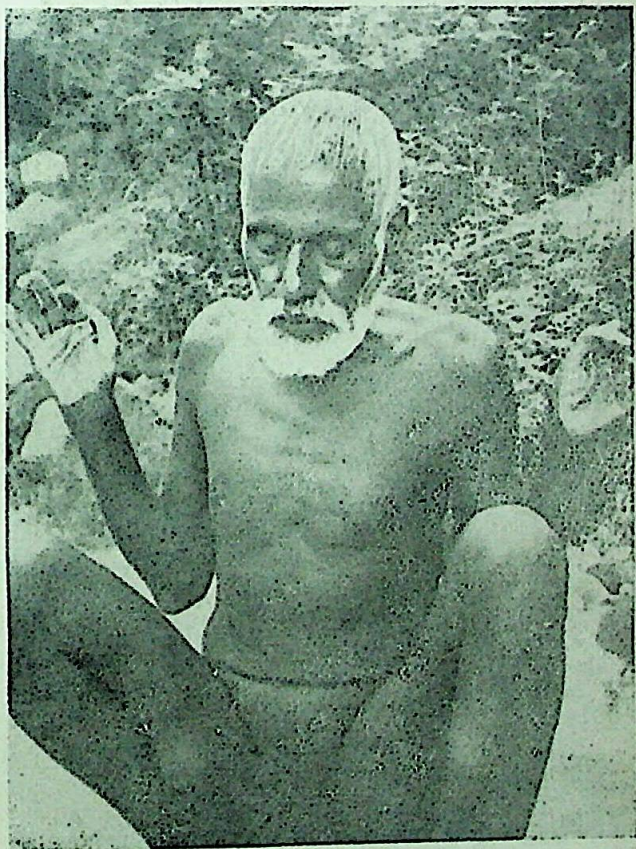
अवधूत श्री विष्णुदत्त जी महाराज

नग्न अवस्था में देह अभ्यास रहित होकर, उत्तर काशी के
उस पार में रहते हैं। गंगाजी - सूर्योपासना व
जप इनके कर्माभास रूप में देखा जाता है।

गोमुख व बद्रीनाथ के
बीच में
(३ पड़ाव, ४० मील)
शिव लिंचूड़ा है।

गोमुख के ऊपर तपोवन
नन्दन कानन,
बद्रीनाथ, के ऊपर
शतपथ व वसुधारा
है।

The kings of Europe & Asia bowed down before the unconquirable Alexender the great, but before such a Himalayan necked 'phakir', this Alexender the great, felt the poverty of his own heart and bowed down.

भगवान वेदव्यास, अश्वत्थामा, हनुमान, परशुराम आदि चिरञ्जीवगण, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ व देवगण भी सूक्ष्म शरीरसे इस देवभूमि हिमालय में विराजते हैं। कई कई भाग्यवान, अभिमान - शून्य सेवक, शुद्ध चित्त साधक, निष्कपट सत्यवादी पुरुषों को कुछ देर के लिये दर्शन देते हैं। कभी कभी स्वप्न में भी दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं।

शुद्धि - पत्र

अशुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
ऋषियों ने	२८	२३	ऋषियों ने कहा कि
क्षर	३०	५	क्षण
Labortry	३१	१	Laboratory
सकता	३६	१०	सकता ?
आध	३६	२०	आठ
Cnotem plation	४४	५	Contemplation and

For the blocks of this book, thanks with Supreme Bliss, to Swamijee's Himalayan companion, Mr. M. Roy, 5 Durga pithuri lane, Cal. 12 and to Mr. P. Mallick, installor, Shri Bhagaban Badrinath-Kedarnath at 28 A. Balaram Gosh st. Shambazar, Calcutta

मनो - बुद्ध्यहंकार-चित्तानि नाहं न कर्णं न जिह्वा न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योमभूमिर्नतेजो न वायु श्चिदानन्द रूपः शिवोऽहंशिवोऽहम् ॥
न मृत्युर्नशङ्का न मे जाति भेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्मः ।
न बन्धु र्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोहऽम् ॥

श्रीशंकराचार्य भगवतः निर्वाण षट्कम्

अहं नामरो नैव मर्त्यो न दैत्यो न गन्धर्व यक्षः पिशाच प्रभेदः ।
पुमान्नैव च स्त्री तथा नैव षण्ढः प्रकृष्टः प्रकाशस्वरूपः शिवोऽहम् ॥
अहं नैव बालो युवा नैव वृद्धो न वर्णी न च ब्रह्मचारी गृहस्थः ।
वनस्थोऽपि नाहं संन्यस्तधर्मा जगज्जन्मनाशैक हेतुः शिवोऽहम् ॥

श्री शङ्कराचार्य भगवतः निर्वाणमञ्जरी

असङ्गोऽहमसङ्गोऽहमसङ्गोऽहं पुनःपुनः ।
सच्चिदानन्द रूपोऽहम हमेवाहमव्ययः ॥
नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्ययः ।
भूमानन्द स्वरूपोऽहम हमेवाहमव्ययः ॥
नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमव्ययः ।
परमानन्द रूपोऽहम हमेवाहमव्ययः ॥
शुद्धचैतन्यरुपोऽहं मात्मारामोऽहमेव च ।
अखण्डानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥
प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं प्रकृतेः परः ।
शाश्वतानन्द रूपोऽहम हमेवाहमव्ययः ॥

श्री मच्छङ्कर भगवतः ब्रह्मज्ञानावली माला
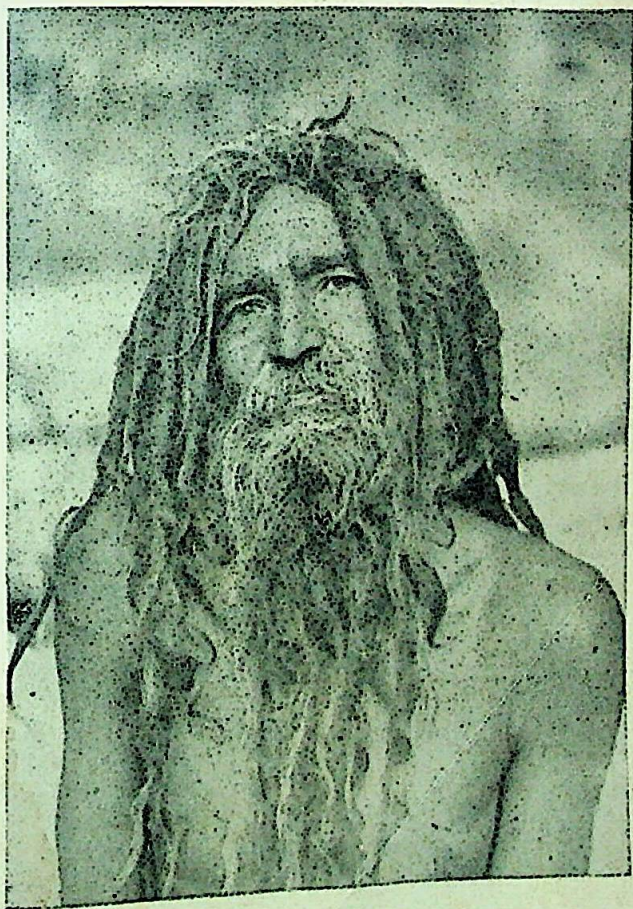
अवधूत श्री (छोटे) रामानन्द जी महाराज
शीतकाल में भी नग्न अवस्था में १२/१४ फीट बरफ के नीचे गंगोत्री में समाधि निष्ठ रहते हैं।

Love for Love's sake, towards the moral and spritiual field, is God's expression in heart.

Shree Swami Swanandaji

"And so the Vedanta in its unfalsified form, is the strongest support of Pure mcrality, is the greatest consolation in the sufferings of life & death."

Prof. Paul Daussan,

Kil University, Germany.

स्वामीजी की अन्यान्य पुस्तिकायें :—

आत्म-निष्ठा, आनन्द-लीला, मन्त्र-गार्हस्थ्य तथा राष्ट्र धर्म।

भगवत कृपा प्रार्थिणी

प्रकाशिका :—कुमारी विमला देवी, सुपुत्री अमोलक राम मेहरा

AMOLAKRAM OMPRAKASH,

Guru Bazar, Amritsar.

Cover & Blocks printed at the Kapoor Printers, Kanpur.